'झूठा सच' और 'मेरी तेरी उसकी बात' जैसे जगत-प्रसिद्ध उपन्यासों के ख्यातनामा लेखक यशपाल के सुयश का आज सारी दुनिया मे डंका बज रहा है।

जीवन में (भारत में स्वतंत्रता-संग्राम काल मे) सक्रिय क्रान्तिकारी और विप्लवी नायक होने के कारण यशपाल की उँगलियाँ पिस्तौल और कलम—दोनों पर समान रूप से अभ्यासी रही हैं ... निकटता से देखा ... रचनाओ मे भारत ... जन-जीवन अपनी ...

प्रस्तुत संग्रह ... है और भारत की ... कथाओं का ऐसा ...

भूख के तीन दिन
(कहानी संग्रह)

भूख के तीन दिन

कहानी संग्रह

*

यशपाल

*

विप्लव कार्यालय, लखनऊ की ओर से

लोकभारती प्रकाशन

१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

अनुक्रम

भूख के तीन दिन

भूख के तीन दिन

नन्दन को पेट भर खाये पांचवां दिन था। तीन दिन से उसके पेट में जल के अतिरिक्त कुछ नहीं गया था। वह केवल निराहार नही था, बहिष्कृत और निराश्रय भी हो गया था। अब जल पीने से भी सन्तोष नहीं, कष्ट ही होता था, आंते उलटने लगतीं। भूख की वेदना असह्य हो जाने पर मन वश करने के लिये गली-सड़क किनारे किसी नल से चुल्लू में जल ले एक-दो घूंट चुसक लेता।

नन्दन के मन-मस्तिष्क भूख की शारीरिक वेदना और अन्याय तथा अपमान के प्रति क्रोध से धुंधले हो गये थे। स्वयं को समझाना चाहता था—भूख को पहले भी सम्मानपूर्वक सहा और वश किया है। तीन वर्ष पूर्व वह विद्यार्थी संघ के जोशीले गुट मे था। दफ़ा एक-सौ-चवालीस भंग करने वाले दल में गिरफ्तार होकर तीन मास जेल काटी थी। विद्यार्थियो ने जेल में बन्द किये जाते ही 'सी' क्लास के कैदियों जैसा व्यवहार किया जाने के विरोध में अनशन कर दिया था। उनकी मांग पूरी होने में छः दिन लग गये थे। तब वह जेल अधिकारियों या सरकार के सन्मुख निर्भय, गर्व से माथा उठाये रहा था।........ जान की पर्वाह नही। जब तक हमारी मांगे पूरी नहीं होंगी, अनशन रहेगा। अब वह बात नहीं थी—भूख की वेदना तो थी परन्तु गर्व का आधार नही था। अनशन में ओटे या फर्श पर कम्बल बिछाकर बैठे या लेटे रहने की सुविधा भी नहीं थी। यहां से वहां मारा-मारा फिर रहा था। चेहरे की मुद्रा और कपड़ों की हालत ऐसी हो गयी थी कि व्यवस्था की रक्षा के लिये तैनात सिपाही उसे किसी काम-काज की जगह खड़े रहने का भी अधिकारी नहीं समझ रहे थे। सोच सकना भी कठिन हो गया था कि कर क्या सकता है। और इस सब का कारण था—उनकी आत्म-सम्मान की धारणा और निधड़क हाज़िरजवाबी का चस्का।

अदृश्य विपत्तियों ने नन्दन को सब ओर से घेर कर, पूरी नाकाबन्दी करके उस पर आक्रमण किया था। प्रकट आक्रमण उस पर हुआ दफ्तर में····जीविका का सूत्र छिन्न करके। वह ग्यारह मास से दैनिक 'महाभारत' में काम कर रहा था परन्तु अभी तक अप्रेन्टिस। अप्रेन्टिस होने पर भी पत्र के लिये अपनी उपयोगिता और क्षमता के सम्बन्ध में उसका आत्मविश्वास अपने से बड़ों और अनुभवियों से कम न था। भाषा और साहित्यिक सूझ-बूझ के आत्मविश्वास के कारण ही उसने पत्रकारिता या सम्पादन के क्षेत्र में कदम रखा था। बी० ए० फ़र्स्ट डिवीजन में पास किया था। सचिवालय में या अन्य सरकारी नौकरी का विचार उसने इसीलिये नहीं किया कि किरानी के जीवन की उदास समरसता और दैन्य उसे सह्य न थे। वह अपनी क्षमता के लिये रचनात्मक अवसर चाहता था। तब अदृश्य भाग्य ने भी चारों ओर से अनुकूल परिस्थितियां बना दी थी।

नन्दन का सहगामी और ज्येष्ठ मित्र शंकर 'महाभारत' में सहसम्पादक था। शंकर को दिल्ली के एक दैनिक में खूब अच्छे वेतन पर अवसर मिल गया। नन्दन जीविका की खोज में था। शंकर ने 'महाभारत' से चार मास का अवकाश लेते समय वहां नन्दन का परिचय करा दिया और नजरबाग में अपना कमरा भी उसे दे गया। शंकर गत पांच वर्ष से उस कमरे का केवल पन्द्रह रुपये मासिक दे रहा था। मकान मालिक कमरे को नये सिरे से तीस-तैंतीस से कम में न उठाता। शंकर हर मास किराया सात-आठ तारीख तक जरूर दे देता था। मकान मालिक से कह गया था—कुछ दिन के लिये जा रहा है, उसका भाई किराया दे देगा। वह नन्दन को मकान मालिक के मिजाज से और किराये में विलम्ब न करने के लिये सावधान कर गया था।

नन्दन अप्रेन्टिस था तो क्या, वह किसी से दबता नहीं था। समय पड़ने पर उसकी कद्र भी होती थी। समाचार-तारों के अनुवाद करते समय अनुभवी सहयोगी भी कभी उससे शब्द पूछ लेते थे। कार्टून के शीर्षक में प्रायः उसका सुझाव काम आ जाता। वह कोई जमता मुहावरा सुझा देता या तुकबन्दी बैठा देता　वाह-वाह हो जाती　　　क्या मह　　　के सामने भी

सुझाव देने में झिझकता न था। सहयोगियों में उन पर फिकरे कसता............चार लाइन शुद्ध लिख नहीं सकते।........चौथाई कालम की टिप्पणी के लिये आधे घण्टे माथा पकड़े बैठे रहेंगे। अप्रेन्टिस होने के कारण उसे प्रायः फाइनल प्रूफ देखने के लिये दे दिये जाते थे। वह दूसरों के लिखे में शब्द और वाक्य भी बदल देता। सीनियर खिसिया कर रह जाते। दो-तीन बार उसने मुख्य सम्पादक के लिखे सम्पादकीय में भी शब्द बदल दिये—'सत्यता' की जगह 'सचाई' या 'सत्य' और 'राष्ट्रवादिता' के स्थान पर केवल 'राष्ट्रवाद' कर दिया। ऐसी हरकत करता तो मुस्कराकर सहयोगियों को दिखा भी देता। रेस्तोरां में मित्रों से चर्चा करता और चर्चा नगर के दूसरे दैनिक 'जगजीवन' के कार्यालय तक पहुँच जाती। सहयोगी उसे सराहना से फुसलाते रहते परन्तु इस प्रसंग में उपसम्पादक और मुख्यसम्पादक से कुछ और ही कहते थे। नन्दन को परवाह भी क्या थी, कोई चुगली करे तो उसके ठेंगे से।

नन्दन को दैनिक 'महाभारत' में काम मिल जाने पर नगर के नवोदित साहित्यिकों और कलाकारों में उसका परिचय काफी बढ़ गया और उसकी धाक भी जमने लगी। परिचय-विस्तार से उसका खर्च भी बढ़ा। पत्र से अप्रेन्टिस का वेतन केवल एक सौ बीस रुपल्ली मासिक मिलता था। नगर के नवोदित साहित्यिकों और कलाकारों के अड्डे 'कुन्दन' में वह प्रायः ही संध्या दो-ढाई घण्टे बैठता। चाय, पान-सिगरेट के लिये वह सभी के प्रति उदार था। कभी कोई साहित्यिक या कलाकार बन्धु कठिनाई बता देता तो पांच-दस और निकल जाते। 'कुन्दन' में दस-पन्द्रह रुपये उधार बने ही रहते, इसी प्रकार 'निर्मल भोजनालय' मे भी। कमरे का किराया छः मास तो उसने प्रतिमास चुकाया फिर वहां भी एक मास पिछड़ कर देने लगा। पत्र से वेतन सात तारीख को मिलने का नियम था। पहली-दूसरी तारीख से नन्दन की जेब मे कुछ भी न रह जाता परन्तु चिन्ता न होती। मुहल्ले के नुक्कड़ पर और दफ्तर के कैन्टीन मे भी उसका उधार चलता था। कई बार तो रिक्शा पर 'कुन्दन' पहुँचता और रिक्शा वाले को किराया 'कुन्दन' के मालिक मगन जी से लेकर चुका देता। 'कुन्दन,' 'निर्मल' और पान-सिगरेट वाले भी पहली-दूसरी तारीख को उसे अपने

हिसाब की याद दिला देते। नन्दन के इस फक्कड़पन में भी एक अदा थी। लोग सराहना मे मुस्करा देते।

अप्रैल की पहली को नन्दन के लेनदारों के आग्रह कुछ उग्र हो गये थे। मार्च में वह किसी को कुछ न दे पाया था। सभी जगह कर्ज साधारण से दूना हो गया, मकान भाड़ा भी दो मास का चढ़ गया। कारण उसका लिहाजी स्वभाव ही था। मार्च की सात को हुंकार जी एक बजे दफ्तर में आकर नन्दन को नीचे बुला ले गये। उन्हें सहसा सौ रुपये की जरूरत आ पड़ी थी। तीन दिन में लौटा देने का पक्का वायदा किया था।

हुंकार जी को इतनी रकम के लिये भी इन्कार करना कठिन था। नयी पीढी के साहित्यकारो और पत्रकारों में हुंकार जी की प्रतिष्ठा सबसे अधिक है। वे दिल्ली के बहुत बडे दैनिक के प्रतिनिधि हैं। दो कमरे के फ्लैट में रहते हैं। फोन, नौकर, स्कूटर है। नवोदितों की रचनायें प्रकाशित करवा देते हैं। अपनी रिपोर्ट और टिप्पणी से उन्हें चढ़ा-गिरा सकते हैं। अपने मकान पर चाय-कॉफी, पान से लोगो का सत्कार करते हैं। नन्दन सौ तो नहीं दे सकता था परन्तु दफ्तर से वेतन पाते ही उन्हें सत्तर दे आया था। अन्य सब लोगों को सप्ताह-दस दिन में उधार चुका देने का आश्वासन दे दिया था।

नन्दन को स्वयं मांगने जाने मे संकोच हुआ परन्तु हुंकार जी को तीन सप्ताह याद न आया तो एक दिन 'कुन्दन' में भेंट हो जाने पर ज़िक्र किया। हुंकार जी ने विश्वास दिलाया—इस समय तो जेब मे नहीं है परन्तु कल-परसों में स्वयं दफ्तर में भेज देंगे। हुंकार जी के यहां से रुपया न आया तो नन्दन पहली तारीख संध्या उनके फ्लैट पर गया। विजया तैयार हो रही थी। उन्होने नन्दन को भी पिलायी। नन्दन ने याद दिलाकर अपनी जरूरत बतायी। हुंकार जी ने भूल पर खेद प्रकट किया और वायदा किया—परसों निश्चय स्वयं दफ्तर मे आकर दे जायेगे। नन्दन के मन में हुंकार जी के वचन के प्रति कुछ सन्देह हो गया था परन्तु घबराहट न थी। दूसरे तीन-चार मित्रों से भी कुछ लेना था। विचार था, वेतन मिलने पर सबका आधो-आध भी चुकता कर देगा और जरा मुट्ठी कस लेगा तो निभ जायगा। अनुमान था, उपसम्पादक को कुढ़न के

कारण ही उसका कनफ़र्मेशन रुका हुआ था। वह नन्दन के काम से सन्तुष्ट होकर भी रिकमेन्डेशन रोके हुआ था। बारह मास की समाप्ति पर तो, नियमानुसार, कनफ़र्मेशन रुक नहीं सकता था। तब वेतन एक सौ सत्तर ! क्या चिन्ता थी।

छः तारीख नन्दन की ड्यूटी दस से पांच तक थी। लगभग ढाई बजे प्रूफ की एक गैली आयी। प्रधान मंत्री के भाषण पर उपसम्पादक ने स्वयं शीर्षक दिया था—'अन्न के उत्पादन के लिये सभी सम्भव प्रयास किये जायें।' शीर्षक चौबीस प्वाइंट के बड़े अक्षरों में होने से दो कालम में भी नहीं अट रहा था, 'किये जाये' दूसरी पंक्ति में पड़ता था। नन्दन समीप बैठे मृदुल जी को शीर्षक दिखाकर मुस्कराया और शीर्षक बदल दिया—'अन्न उत्पादन के सभी सम्भव यत्न कीजिये'। मैटर में भी प्रयास शब्द के स्थान पर 'यत्न' कर दिया। प्रूफ़ देखकर उसने चपरासी के लिये ट्रे में डाल दिया और पान के लिये नीचे चला गया।

नन्दन शीघ्र ही लौट आया। अन्य प्रूफों की प्रतीक्षा थी। वह लौटा तो सहसम्पादकों की साझी बड़ी मेज से पृथक बैठे उपसम्पादक ने उसकी ओर घूर कर पूछ लिया—"कहां टहल रहे थे ?"

"गैली देख दी है। चपरासी था नहीं, जरा पान के लिये चला गया था।" नन्दन ने उत्तर दिया। शुद्ध की हुई गैली उसे उपसम्पादक के सामने दिखाई दी।

उपसम्पादक ने गैली में शीर्षक की ओर कलम से संकेत किया—"इसमें क्या मिस्टेक थी ?"

"कालम में अट नहीं रहा था। अर्थ अब भी स्पष्ट है।"

उपसम्पादक ने 'प्रयास' शब्द पर कलम रख दी—"इस करेक्शन की क्या जरूरत थी·······केवल कम्पोज़ीटर को परेशान करने के लिये ?"

"प्रयास में विफलता की ध्वनि है।"

"हूं।" उपसम्पादक की आंखें फैल गयीं, "इसका निर्णय कौन करेगा ?"

मेज पर काम में व्यस्त तीनों सहसम्पादकों की नजरें उस ओर उठ गयीं।

"कोष।" नन्दन ने निश्शङ्क आलमारी में सजी जिल्दों की ओर संकेत किया।

उपसम्पादक ने एक नजर कौतूहल भरी दृष्टियों की ओर देखा और उन्हें साक्षी बनाकर कड़े स्वर में पूछा—"आपका काम हमें सिखाना है ?"

"हरगिज नहीं," नन्दन ने निःसंकोच उत्तर दिया, "परन्तु भूल को प्रूफ मे शुद्ध कर देना मेरा काम जरूर है।"

"हूं !" उपसम्पादक का स्वर ऊंचा हो गया, "आप कहना चाहते हैं—हम भाषा नहीं जानते, आप ही जानते हैं।"

"कहने की क्या जरूरत है ?" ध्वनि स्पष्ट थी।

उपसम्पादक की आंखें लाल हो गयीं और सहसम्पादकों की नजरे कागजों पर झुक गयीं।

"आप तुरन्त इस दफ्तर से बाहर हो जाइये।" उपसम्पादक ने दरवाजे की ओर संकेत कर गर्जन से आदेश दिया, "आप यहां काम नही कर सकते।"

"मेरे काम में क्या त्रुटि है ?" नन्दन ने पूछ लिया।

"बहस की जरूरत नहीं !" उपसम्पादक ने धमकाया, "आप यहां काम नही कर सकते, न यहां आपकी जरूरत है।"

अप्रत्याशित व्यवहार से नन्दन पल भर मौन खड़ा रहा।

"आपने सुना नही ?" उपसम्पादक फिर गरजा, "स्वयं नहीं जायंगे तो मुझे चपरासी को आदेश देना होगा।"

नन्दन ने कमरे से चले जाना ही उचित समझा। एक बार मन मे आया—मामला मुख्यसम्पादक के सामने रखे। फिर सोचा, कल सही। मन बहुत खिन्न हो गया था, पैदल चलने को न हुआ। उसने रिक्शा ले ली और 'कुन्दन' की ओर चल दिया। एक प्याला चाय लेकर बीतचीत से मन को स्वस्थ कर सके। कुन्दन के सामने रिक्शा से उतरा तो जेब खाली थी। कुन्दन के मालिक मगन जी से एक रुपया लेकर छः आने रिक्शा को दिये और समीप पनवाड़ी से एक डिबिया सिगरेट ले ली।

मगन जी ने नन्दन के लिये चाय बनायी। प्याला स्वयं उसके सामने रख समीप बैठ बातें करने लगे—भैया नन्दन जी, कल हिसाब जरूर साफ हो जाये। जानते हो, हमारे पास कौन पूंजी है। मालिक मकान, चाय वाला, चीनी वाला

परेशान किये हैं। आप लोगों से मिलता है तो चुका देते हैं।" मगन जी ने साहित्यिक रुचि के कारण साहित्यिकों के सम्मिलन का स्थान बना देने के लिये 'कुन्दन' चालू किया था। केवल एक छोकरा सहायक था। 'कुन्दन' में अधिकांश नवोदित साहित्यिक और कलाकार ही आते थे परन्तु मगन जी का निर्वाह भी चलता था।

नन्दन ने चाय के बाद सिगरेट सुलगाया। मगन जी को भी पेश किया और दफ्तर की झड़प को साहित्यिक रूप देकर सुनाने लगा। मगनजी ने सहानुभूति से चिन्ता प्रकट की—"उपसम्पादक बुरा मान गया था तो जरा बात कर लेते।"

नन्दन ने गर्दन झटक कर छत की ओर भरपूर धुआं छोड़ दिया—"अरे, ऐसो को हम घास नहीं डालते।"

'कुन्दन' में छः-साढ़े छः तक कई दूसरे उदीयमान कवि और कलाकार आ गये—पुलकजी, हरिहर जी, सागरजी, बर्क साहब आदि। नन्दन मन की खिन्नता भुला सकने के लिये मित्रों को अपने हिसाब मे चाय पिलाकर उपसम्पादक से झड़प को ध्वनि से व्यंजना दे कर बार-बार सुनाता रहा—"साला बोला—आप कहना चाहते हैं, हम भाषा नही जानते, आप जानते हैं। हमने कहा—कहने की क्या जरूरत है।.........कहिये भला!"

मित्र पान से रगे दांत दिखाकर और मुफ्त सिगरेट के गहरे कशों से खांस-खांस कर सराहना के कहकहे लगाते रहे। नन्दन 'कुन्दन' में साढ़े नौ तक बैठा रहा। चार प्याले चाय पी चुका था। सिगरेट की डिबिया भी समाप्त हो गयी थी। सिगरेट की जरूरत थी। चलते समय मगन जी से कहा—"बन्धु, एक अठन्नी और दे दो। कल साफ़ हो ही जायगा।"

'कुन्दन' में नन्दन प्रशंसकों से घिरा बेपरवाही दिखाने के लिये तीन घण्टे तक बकता रहा परन्तु अकेले पड़ते ही मन फिर खिन्न हो गया। इतना खिन्न कि आहार के लिये 'निर्मल' जाने की इच्छा भी न हुई। चाय कुछ अधिक पी ली थी। नज़रबाग जाकर अपने कमरे में लेट गया। इतनी जल्दी नींद की आदत

न थी। काफ़ी देर तक सिगरेटें फूंक, करवटें बदल सोचता रहा—देखें गुप्ताजी (मुख्यसम्पादक) क्या कहते हैं ?………अरे बहुत दुनिया पड़ी है………।

नन्दन ने रात आंख लगने से पूर्व निश्चय कर लिया था, दैनिक 'जगजीवन' के दफ्तर में जाकर बात करेगा। वहां दोनों उपसम्पादकों से परिचय था। गोष्ठियों मे उनसे बेझिझक बातचीत होती थी। प्रातः सावधानी से शेव बनायी। चलते समय लांड्री का धुला कुर्ता-पाजामा पहना। मुहल्ले के नाके पर पनवाड़ी से सिगरेट की डिबिया उधार ली तो उसने याद दिला दिया—"भैयाजी, आज सात तारीख आ गयी।"

"हां-हां हो जायगा" नन्दन ने आश्वासन दिया।

नन्दन गत रात भोजन न कर सका था सो भूख चमक आयी थी। नौ बजे ही 'निर्मल' में पहुंच गया। 'निर्मल' के मिश्र जी ने भी चेतावनी दे दी—"नन्दन भैया, आज सात है। देखो, चालीस से ऊपर बकाया हो गया। आज निबटा डालो।" वे दीर्घ परिचय से जानते थे, इस समय चूके तो अगले मास की सात तक के लिये टल गया। नन्दन ने सुझाव स्वीकार कर लिया।

'महाभारत' के उपसम्पादक ने जैसा अभद्र व्यवहार किया था, वहां काम कर नहीं सकता था। करेगा तो पांडे (उपसम्पादक) को नीचा दिखा कर। मुख्यसम्पादक को नजर में अपनी कद्र का विश्वास था। चाहता था, गुप्ताजी स्वयं बुलाकर माजरा पूछें। दफ्तर समय पर पहुँचने की चिन्ता न थी। वेतन सात को, दो से चार बजे तक अकाउन्टेंट के कमरे में मिलता था। साढ़े दस के करीब 'जगजीवन' के दफ्तर में पहुंचा।

"आइये, आइए नन्दन जी।" उल्लासपूर्ण स्वागत मिला। नन्दन की व्यंजना पूर्ण हाजिरजवाबी का समाचार वहां पहुंच चुका था।

"क्या झगड़ा कर लिया पांडे जी से ?" जगजीवन' के उपसम्पादक सक्सेना ने पूछा। नन्दन ने सरस शैली में वृत्तांत की पुनरावृत्ति की। सक्सेना और सहसम्पादकों ने रसिकता से कहकहे लगाये। नन्दन ने अपने लिये अवसर की बात की तो सक्सेना का चेहरा गम्भीर हो गया—"यहां हम लोगों के हाथ में क्या है भैया। सब कुछ जनरल-मैनेजर के निर्णय से होता है। चाहे जिसे हमारे

गले बांध दे ।..........दो अप्रेन्टिस पहले से मौजूद हैं ।..........बेचारा चार मास से ....और.....को तो छः हो गये । लखनऊ में दो तो दैनिक है; क्या चांस हो सकता है ।....अब तो मार्केट दिल्ली में है ।"

नन्दन दो बजे 'महाभारत' प्रेस मे अकाउन्टेट के यहां पहुँचा । अकाउन्टेट मास के वाउचरों की फाइल मे उसका वाउचर खोजने लगा । नन्दन ने अपने वेतन के वाउचर पर पिछले कल दोपहर से पहले ही हस्ताक्षर कर दिये थे । उसे आशंका हुई, उपसम्पादक ने उसे परेशान करने के लिये वाउचर रोक न लिया हो ।

"इसमें आपका वाउचर नहीं है ।" अकाउन्टेट ने विस्मय प्रकट किया ।

"हमारा अनुमान है कि उपसम्पादक ने रोक लिया होगा ।"

"अनुमान है तो हमारा वक्त खराब करने के लिये आये हो ।" अकाउन्टेट ने फाइल पटक दी ।

नन्दन अभद्रता पी गया—"एक वाउचर दे दीजिये, हम अभी भर कर साइन किये देते हैं ।"

"उपसम्पादक और सम्पादक के साइन भी तुम्हीं कर दोगे ?" अकाउन्टेट ने चश्मे के ऊपर से घूरा ।

"उनके हस्ताक्षर भी करवाये देते हैं ।"

"बहस के लिये हमारे पास समय नहीं है, काम करने दो ।" अकाउन्टेट ने मुंह फेर लिया ।

नन्दन के लिये मुख्यसम्पादक के यहा स्वयं और तुरन्त जाने की मजबूरी हो गयी । मुख्यसम्पादक के दरवाज़े पर रहता है चपरासी । वह भीतर से अनुमति पाकर ही प्रवेश करने देता है । नन्दन प्रायः आधे घन्टे तक प्रतीक्षा में खड़ा उबलता रहा ।

नन्दन प्रायः आधे घन्टे तक प्रतीक्षा में खड़ा उबलता रहा ।

नन्दन की शिकायत सुन कर मुख्यसम्पादक ने स्वीकार किया—"पांडे जी ने आपका वाउचर हम से बात करने के लिये रोक लिया था ।" बेरुखी स्पष्ट थी ।

नन्दन ने उपसम्पादक की नाराजगी का कारण बताकर निवेदन किया—

"हमने तो अपने विचार में सुधार ही किया था। हम तो कोष में दिखा देने को तैयार हैं।"

"आप बहुत विद्वान है। आपको यूनीवर्सिटी में प्राध्यापक होना चाहिये, वहां ही जाइये।"

नन्दन ने दांत पीस लिये—"हमने पूरा मास काम किया है। एक मास और सात दिन का वेतन तो मिलना चाहिये।"

"हमने कब कहा, नहीं मिलना चाहिये। हम वाउचर पर हस्ताक्षर करके अपनी रिपोर्ट के साथ आज जनरल मैनेजर के यहां भिजवा देंगे। नहीं जानते हो कि पूरा हिसाब जनरल मैनेजर की मंजूरी से ही चुकता हो सकता है। हमने कागज उनके यहां भेज दिये हैं।"

नन्दन क्रोध में जनरल मैनेजर के यहां पहुंचा। जनरल मैनेजर दफ्तर से जा चुके थे।

नन्दन का सिर क्रोध और अपमान से घूम रहा था। नजरबाग लौट कमरे के किवाड़ मूंद चुप-चाप खाट पर लेट गया। कमरे सांझ का अंधेरा भरने लगा तो चाय और सिगरेट की तलब अनुभव हुई। नन्दन कुछ देर टहल कर और बात-चीत से गम गलत करने के लिये किवाड़ों मे ताला लगा रहा था। मकान मालिक उसकी ओर बढ़ आया, नजरों में तकाजा स्पष्ट था। नन्दन ने क्षमा-याचना के स्वर मे कहा—"आज जनरल मैनेजर दफ्तर नही आये, कल हो जायेगा।"

मकान मालिक ने असन्तोष का निश्वास छोड़ राह दे दी।

नन्दन 'कुन्दन' मे पहुंचा। मगनजी ने गहरी नजर से उसकी ओर देखा। नन्दन की उदासी भांप कर उनका चेहरा भी गम्भीर हो गया। मगन जी ने चाय के लिये तो पूछा नही, सब लोगो को सुना कर हिसाब चुकता न किया जाने की शिकायत करने लगे। नन्दन को यह धृष्टता सह्य न हुई। उसने भी कुछ रुखाई से कह दिया—"एक दिन मे पहाड़ नही टूट पड़ेगा। आज जनरल मैनेजर आफ़िस नहीं आये, कल हो जायगा।"

मगन जी को सन्तोष न हुआ, बोलते गये—"हम तो माल उधार खा-खा

कर किसी तरह जगह कायम रखे हैं। ऐसे चलेगा कैसे ? हमने आपके आश्वासन पर चाय-चीनी वाले को आज के लिये वचन दे दिया था, हम झूठे पड़ेंगे।" उन्होंने मुंह फेर लिया। नन्दन को चाय के लिये नहीं पूछा। सागरजी, पुलकजी और बर्क नये लेखक गिरराज की कहानी की आलोचना करते रहे। नन्दन इन लोगो को बीसियो बार चाय पिला चुका था। पर उन्हें नन्दन के लिये चाय मंगाने का ध्यान न आया। नन्दन को यह उपेक्षा खटक गयी। वह घृणा से उठ कर 'कुन्दन' से निकल गया, ऐसे कमीनों से दूर रहना बेहतर।

नन्दन विक्टोरिया पार्क की ओर चला गया। खूब प्रकाश और सैलानियो की खूब चहल-पहल परन्तु नन्दन को कुछ दिखायी नहीं दे रहा था। एक पेड़ की छाया के अंधेरे मे पड़ी बेंच पर कोई न था। नन्दन अकेला बैठा लोगों के कमीनेपन के प्रति खिन्नता अनुभव करता रहा। चाय की इच्छा और भूख भी अनुभव हो रही थी परन्तु क्रोध और खिन्नता उससे अधिक। ऐसी अवस्था में 'निर्मल' कैसे जाता। 'निर्मल' के मिश्रजी से तो 'कुन्दन' के मगनजी जैसी बेतकल्लुफी भी न थी। अपने कमरे मे लौट, चादर से मुंह ढंक सो रहने के अतिरिक्त चारा न था परन्तु लाचारी से नींद तो नहीं आ जाती सिर चकरा रहा था—एक ही दिन मे दुनिया इतनी बदल गयी।

आठ तारीख। गत रात जल्दी ही खाट पर लेट जाने और पेट हल्का रहने के कारण प्रातः नींद भी शीघ्र टूट गयी। नन्दन की आंख खुलते ही पहली अनुभूति हुई भूख की। सूर्योदय भी नहीं हुआ था—इतनी जल्दी क्या हो सकता था। खिड़की से सूर्योदय का आभास मिलने तक वह लेटा ही रहा। यह भी खयाल था—जब तक जेब में पैसा न हो, कुछ नही हो सकता। एक ही उपाय था—बारह बजे जनरल मैनेजर से बात करके महीने और सात दिन के डेढ़ सौ ले ले तभी कही जाना ठीक होगा। सब से पहले मगन के मुंह पर ही रुपये फेंकेगा। 'निर्मल' और मकान मालिक का भी चुकता कर देगा। दुनिया कितनी कमीनी है। कुर्ता-पाजामा मैले हो गये थे परन्तु जेब खाली होने के कारण लांड्री से कपड़े भी नहीं ला सकता था। जनरल मैनेजर के सामने जाना था। नन्दन का स्वयं कपड़े धोना पसन्द न था। सोचा—खद्दर का कुर्ता-पाजामा बिना प्रेस

के भी चलेगा। लेटे रह कर ही क्या फायदा। उठकर नहाने की बट्टी से ही कुर्ता-पाजामा धोकर सूखने डाल दिये। कपड़े सूखने की प्रतीक्षा में फिर लेट गया। एक सिगरेट तक न थी, बहुत कोफ्त हो रही थी।

नन्दन सवा बारह जनरल मैनेजर के दफ्तर के दरवाजे पर पहुँचा। चपरासी से कागज-पेंसिल लेकर अपना नाम और भेंट का प्रयोजन लिख कर भीतर भेज दिया। जनरल मैनेजर का पी० ए० बाहर आया—"अभी साहब व्यस्त है। एक घन्टे तक आइये। तब तक हम आपका मामला उन्हें दिखा देंगे।"

नन्दन विवश था, एक घन्टे तक कहाँ बैठता ? कैंटीन मे चला गया। कैंटीन का भी पांच-छः रुपके का उधार था। कैंटीन वाले ने स्वयं ही पूछ लिया—"पांडे साहब से क्या झगड़ा कर लिया।" और अपने उधार की बात।

नन्दन ने आश्वासन दिया—"अपना हिसाब लेने ही आये है। अभी घन्टे भर में आपका चुका देंगे।"

नन्दन ने एक खस्ता, एक प्याला चाय और एक डिबिया सिगरेट और ले लिये। कुछ और खाने की प्रबल इच्छा थी परन्तु मन मार कर सिगरेट पीता रहा। डेढ़ बजे उसने अपने नाम का पुर्जा फिर जनरल मैनेजर के यहाँ भेजा। पी० ए० तुरन्त बाहर आया। उसने एक वाउचर नन्दन को थमा दिया—"यह लीजिये। अकाउन्टेंट के यहाँ चले जाइये।" नन्दन ने वाउचर पर लिखी रकम पर नजर डाली, एक सौ सैंतालीस रुपये कुछ आने थे। बहुत है, उसने सोचा।

अकाउन्टेंट बहुत व्यस्त था। नन्दन कुछ मिनट उनका ध्यान पाने की प्रतीक्षा में खड़ा रहा। नजर अपनी ओर पाकर वाउचर अकाउन्टेंट के सामने रख दिया।

अकाउन्टेंट ने ध्यान से वाउचर देख कर एक फाइल में रख लिया और अपने काम मे लग गया। "हम पेमेन्ट के लिये आये हैं," नन्दन ने खिन्न होकर कहा।

"पेमेन्ट अगली सात तारीख को," अकाउन्टेट ने कागजों पर से नजर लगाये कह दिया। नन्दन ने क्रोध दबा कर कहा—"क्या मतलब, ! हम एक महीना क्या करेंगे ?"

अकाउन्टेंट ने नजर उठायी । सौम्य स्वर में उत्तर दिया—"आप क्या करेंगे, यह काम कैसे बता सकते हैं, हमसे मतलब !"

नन्दन झल्ला उठा—"जनरल मैनेजर ने पेमेन्ट मंजूर कर दिया है । आप हमारा वेतन कैसे रोक सकते हैं ?"

अकाउन्टेंट का स्वर भी ऊंचा हो गया—"हम रोक नहीं रहे हैं । कह दिया अगली सात को ले लीजिये । आज लेना है तो जी० एम० से लीजिये । यहां एडीटोरियल का पेमेन्ट सात को होता है । उसी दिन बैंक से आता है । जी० एम० का यही आर्डर है ।"

"जब हमें यहां काम नहीं करना, आप हमारा वेतन कैसे रोक सकते हैं । यह कौन कानून है ?"

"कानून की धमकी जनरल मैनेजर को दीजिये ।" अकाउन्टेंट ने कड़ाई से कहा—"या आप अदालत में दावा कर दीजिये । मैनेजमेंट निबट लेगी । हमारा सिर न खाइये ।" दोनों ओर से क्रुद्ध ऊंचे स्वर में बात-चीत सुनकर चपरासी भीतर आ गया था ।

नन्दन क्रोध से होंठ चबाता दफ्तर से निकल गया । सड़क पर आकर मन ही मन अकाउन्टेंट को गाली दी""महीने भर की तनख्वाह दबा ली और धमकी देता है, अदालत में दावा कर दो ।""साले को एक रैपट दिया होता और उसके सामने कैश बक्स से रुपया निकाल लेता""साले, दावा तुम करो ।""रैपट देने का परिणाम भी कल्पना में कौंध गया""चपरासी मौजूद था, दूसरे चपरासी दरबान भी आ जाते । अच्छी खासी पिटाई हो जाती और फिर फोन पर पुलिस बुलाकर थाने भिजवा देते । इनकी तरफ़ से वकील होते और हम जेल जाते"" साला इन्साफ़ भी इन्हीं के हाथ में है । तभी गरीब मार खाते हैं । फिर खयाल आया""सचमुच इन बेईमानों पर दावा कर दे""इनकी छीछालेदर तो हो""पर ऐसे मुकदमे का समाचार कौन पत्र छापेगा""यही साले हरामी प्रेस की स्वतन्त्रता की बात करते हैं ।""वेतन के लिये दावा होगा दीवानी में । छः मास की तारीख पड़ेगी""और फिर तारीख""दावा करने के लिये स्टाम्प फीस""यहां कल से पेट मे चूहे कूद रहे हैं । अभी तो महीने भर का वायदा है""फिर मुकद्दमे के फैसले

पर''''यह न्याय है ?''''न्याय भी दाम और ताकत से मिलता है''''न्याय भी बिकता है, न्याय उसका जो ज्यादा कीमत दे सके ।

नन्दन को बौखलाहट में कुछ सूझ नहीं रहा था—क्या करे ?''''''''कहां जाये । कोई जगह जाने लायक नही रह गयी थी । जाकर अपने कमरे में लेट गया । मस्तिष्क को स्थिर करने के लिये कैंटीन से ली डिबिया से दो सिगरेट फूंक डाले ।''''तुरन्त पैसा कहां से मिल सकता है ? हुंकार,''''बेईमान ! पहली को वायदा किया था—खुद आकर दे जायगा ।''''ठाठ से रहेंगे, ड्रिंक करते हैं, स्कूटर है लेकिन उधार लेकर नहीं लौटायेंगे । कोई शर्म नही ! पर हमें तो जरूरत है ।''''साला देगा कैसे नहीं ।''''गर्दन पकड़ कर वसूल करूंगा । नन्दन खाट से उठ खड़ा हुआ । दूसरे लोगों से लेना भी याद आ रहा था । पांच बजने को हो रहे थे । मकान-मालिक के दफ्तर से लौटने का भी समय समीप आ रहा था । हुंकार से लेकर मकान-मालिक और 'निर्मल' को तो निबटा ही दे ।

नन्दन लालबाग में हुंकार के मकान पर पहुँचा । हुंकार का नौकर जीने से उतरता दिखायी दिया । हुंकार दिल्ली गये हुए थे । अगले दिन सुबह आने वाले थे । नन्दन ने खीझ कर सोचा, अब ? संध्या साहित्यिकों और कलाकारों के मकान पर मिलने की क्या आशा । याद आ गया—पुलक अशोक मार्ग पर ट्रैक्टर कम्पनी में काम करता है । उस ने दो मास पूर्व चार रुपये लिये थे । सोचा—पुलक को कम्पनी से निकलते-निकलते पकड़ ले । तेज कदमों से अशोक मार्ग की ओर चल दिया ।

नन्दन को नरही के अड्डे पर पनवाड़ी की दुकान के सामने पुलक दिखायी दे गया । दोनों की आंखें मिल गयीं । "आइये नन्दन जी, पान का शौक कीजिये," पुलक ने पुकार लिया । पुलक ने बीड़ा पान और सिगरेट नन्दन को भी पेश किया । पुलक 'कुन्दन' में वृतांत सुन चुका था । नन्दन के चेहरे पर भी परेशानी थी और उसने जेब में कुछ न बचने की बात बतायी । पुलक ने अपनी जेब उलट कर गिना । एक रुपये का नोट और पैंतीस पैसे थे । नोट उसने नन्दन को देकर कहा, शेष कल संध्या निश्चय ही दे देगा ।

नन्दन ने तीस घन्टे मे केवल एक खस्ता और एक प्याला चाय ही लिया था। सिर दरद कर रहा था। समीप कॉफ़ी हाउस में चला गया। एक प्याला कॉफ़ी ली। बेरा सत्तर पैसे वापस लाया। नन्दन को कॉफ़ी हाउस में टिप देने की आदत थी परन्तु उस समय बैरे से नजर बचा कर पूरे पैसे उठा लिये। भूख और उग्र हो गयी थी। सस्ते में पेट भर सकने के विचार से केसरबाग़ के समीप तन्दूर पर खाना खाया। चार ही चपातियाँ लीं, अभी और इच्छा थी परन्तु मन को रोक लिया फिर भी अड़तालीस पैसे लगे, केवल बाइस बच गये।

संध्या रसिक लोगों के अपने मकानों पर मिलने की आशा न थी। नन्दन कुछ विलम्ब करके साढ़े आठ तक सुन्दरबाग में सागर के यहां पहुँचा। सागर स्कूल में हिन्दी का अध्यापक है। उसने दिसम्बर में नन्दन से दस रुपये लिये थे। कई बार पुकारने पर एक लड़की ने बताया सागर अभी लौटा नहीं था। वह सागर के यहां से असफल लौट रहा था तो विह्वल की याद आयी। विह्वल बेकारी मे निर्वाह के लिये ट्यूशन पढ़ाता था और कविता करता था। विह्वल ने भी उससे चार मास पूर्व दस रुपये, एक मास बाद लौटा देने के वायदे पर लिये थे। वह बहुत दिन से दिखायी नही दिया था। कहां रहता है, यह भी मालूम न था। विह्वल प्रायः बर्क के साथ रहता था। बर्क की जगह मालूम थी। अभी नौ ही बजे थे। नजरबाग लौटने से मकान मालिक के पुकार लेने का डर था। मुहल्ले के मुहाने पर पनवाड़ी भी अभी बैठा होगा।

नन्दन, बर्क से विह्वल का पता जानने गोलागंज चला गया। बर्क ने बताया —विह्वल लखनऊ छोड़ गया था। बर्क ने नन्दन से कभी उधार न लिया था। वह उतना मिलनसार भी नहीं। नन्दन उससे सहायता के लिये कैसे कहता। परन्तु बर्क ने विह्वल की खोज का कारण पूछा तो प्रसंग से बता दिया—उससे कुछ रुपये लेने थे, इस समय बहुत परेशानी आ पड़ी है। बर्क ने औपचारिक सहानुभूति में कह दिया—"आज कल सभी का हाल एक सा है, परेशानी में है कौन नहीं। अच्छा भाई!" उसने बात समाप्त कर दी।

नन्दन साढ़े दस के बाद नजरबाग लौटा। पानवाला दुकान बढ़ा चुका था और मकान मालिक के यहां भी रोशनी नहीं थी। वह तुरन्त बिजली बुझा कर

खाट पर लेट गया। नींद आने तक सोचता रहा—कल सुबह ही सागर को पकड़ना होगा। उससे ट्यूशन के लिये भी कहेगा। कुछ तो अवलम्ब होना ही चाहिये। पर ट्यूशन का पैसा तो मिलेगा, महीना बीतने पर। खैर, कल हुँकार लौट आयेगा। उससे तो वसूल करना ही है। मकान मालिक को तीस भी दे देने से चलेगा और बीस 'निर्मल' में देने से महीना भर आहार का सहारा हो जायगा। तब तक कुछ न कुछ जमा हो जायगा। शायद हुँकार से दिल्ली में किसी जगह की सूचना मिले।

नन्दन को विलम्ब तक सोने की आदत नहीं थी। मकान मालिक के प्रातः ही टोक देने का डर था। उसे हुँकार से भेंट तक टालना जरूरी था। सूर्योदय हो चुका था। वह शेव बना रहा था, मुंदे दरवाजे पर खट-खट सुनाई दी। नन्दन सहम गया। मकान मालिक इतनी जल्दी! नन्दन ने किवाड़ खोले—"ओह, आइये पुलक जी।"

पुलक खाट पर बैठ गया—"भई, हमने संध्या मिलने के लिये कहा था परन्तु फिर याद आया, हमें शायद दोपहर कम्पनी के काम से फैजाबाद जाना पड़े। आपको परेशानी होगी। इसलिये अभी आ गये।" पुलक ने जेब से पांच का नोट निकाल कर नन्दन के सामने रख दिया।

"हमारे पास टूटा हुआ तो है नहीं," नन्दन ने कहा। उसे तीन ही लेने थे।

"च च अरे आप भी क्या बात करते हैं। रखिये, हो जायगा। हमें जरूरत थी तो हमने नहीं ले लिये थे।" पुलक को व्यस्तता थी। शीघ्र ही चला गया।

नन्दन कमरे पर ताला कर गली में दस ही कदम गया था, मकान मालिक का छोटा लड़का भरत दौड़ आया, "सुनिये, फादर कह रहे हैं, हमसे बात करके जाइयेगा।"

नन्दन ने उतावली प्रकट कर कहा—"इस समय बहुत ही जल्दी है। संध्या जरूर हो जायगा।"

मुहल्ले के मुहाने पर पनवाड़ी ने पुकार लिया—"भैयाजी, आज नौ भी हो गयी।" वह जरा रुखाई से बोला था। भरत भी साथ ही चला आया था। नन्दन ने एक डिबिया सिगरेट लेकर पांच का नोट बढ़ा दिया—"लो तीन अभी

ले लो। सोम को पूरा कर देंगे।" पनवाड़ी नोट हाथ में लेकर हंस दिया—"मालिक, आपसे बोहनी की है। अभी गल्ले में कुछ है नहीं। तीन सोम को ले लीजियेगा। हमें बहुत जरूरत है।" नन्दन निरुत्तर हो गया। जेब में बीस पैसे शेष थे।

नन्दन तेज चाल से साग के यहां पहुँचा। पता लगा कि सागर सुबह छः से बारह तक के शिफ्ट में पढ़ाता है। साढ़े बारह तक लौटता है। नन्दन को हुँकार के प्रातः दिल्ली से लौटने की बात याद थी। साढ़े आठ हो रहे थे। वह तुरन्त लालबाग की ओर चल दिया। नौ के लगभग हुँकार के मकान पर पहुँचा। हुँकार लौट आया था पर घर पर न था। दो-चार मिनट पहले ही स्कूटर पर निकल गया था। लौटने का समय बता नहीं गया था। नौकर का अन्दाज दोपहर तक का था। नन्दन बारह तक प्रतीक्षा कहां करेगा। इससे पूर्व प्रतीक्षा का समय वह किसी रेस्तोरां या काफ़ी-हाउस में गुजारता था। अपनी अवस्था के प्रति लज्जा से मन डूबा जा रहा था। चाय की तलब भी परेशान कर रही थी। जेब में पैसे थे कुल बीस। उसने दयानिधान पार्क की बगल सस्ती मुस्लिम दुकान से बारह पैसे में चाय के दो प्याले पी लिये। समय बिताने के लिये जगह सूझ गयी—अमीनुद्दौला लाइब्रेरी में चला गया। दो घन्टे वहां पत्रिकायें पलटता रहा। पढ़ कुछ नहीं सका—मस्तिष्क में तो अपनी समस्या के उपाय की चिन्ता भरमा रही थी।

नन्दन को बारह बजे सुन्दरबाग के समीप सागर दिखायी दे गया। नन्दन ने उसे अपनी स्थिति स्पष्ट बता कर कहा—दस रुपये उसे हर हालत में चाहिये ही।

सागर ने विवशता प्रकट की, उसके पास चार भी नहीं थे और मास के इक्कीस दिन सामने थे। सागर की अवस्था कम खस्ता नहीं थी। वह स्कूल में एक सौ दस रुपये वेतन की रसीद देता था परन्तु पाता था केवल पचहत्तर। स्कूल कमेटी, बहुत से दूसरे स्कूलों की तरह, अध्यापकों से इसी प्रकार रसीदें लेती थी। कारण था कि स्कूल को सरकारी सहायता नियमानुसार अध्यापकों के वेतना का आधा मिलती थी। गरीब अध्यापक लाचार थे। पूरे वेतन की

रसीद दे देने के बाद शिकायत के लिये उनके पास कानूनी सबूत क्या था ? सागर भी निर्वाह के लिये एक-आध ट्यूशन दस-पंद्रह रुपये की कर लेता था। ट्यूशनें मिलती थी केवल वार्षिक परीक्षा से पहले तीन-चार महीनों में, सदा नहीं।

सागर बड़े भाई के साथ रहता था। उसका भाई रेलवे में क्लर्क था। सागर से घर के खर्च के हिस्से में और गांव में बुढ़िया मां की सहायता के लिये उससे पचास ले लेता। मकान मे ऊपर की मंजिल पर एक कमरा और रसोई की जगह थी। रात कमरे में भाई-भाभी और लड़की सोते थे। लड़के और सागर की खाटें रसोई की जगह में डाल दी जाती थीं। सागर नन्दन को अपने यहां बैठा भी नहीं सकता था। उसने कहा—"तुम बीस मिनट में आओ। बस दो रोटी निगल कर आता हूँ। मैं पूरा यत्न करूंगा।"

सागर को दरीबा में एक जगह से ट्यूशन के कुछ रुपये लेने थे। नन्दन को साथ ले उस ओर चला। रास्ते में नन्दन ने उसके ट्यूशन दिला देने का अनुरोध किया। सागर ने बताया—ट्यूशनों का चांस तो होगा दिवाली के बाद। सागर नन्दन को एक बान-मूंज-रस्सी की दुकान के समीप प्रतीक्षा के लिये कह कर दुकान में चला गया। कुछ मिनट बाद आया। उसके हाथ में पन्द्रह रुपये थे। उसने दस नन्दन को दे दिये।

नन्दन के हाथ में रुपये आये तो भूख असह्य हो गयी। बचत के विचार से ढाबे पर पहुँचा। खाना खाकर विश्राम की इच्छा हुई, कई मील पैदल चल चुका था। परन्तु थकावट की चिन्ता न कर कड़ी धूप में हुँकार के यहां चल दिया। दो बज रहे थे। बरामदे में नौकर चटाई पर सो रहा था और किवाड़ भीतर से बन्द थे। नौकर ने चौंक कर बताया—मालिक रात सफर करके आये हैं, सो रहे हैं। चार बजे से पहले जगाने को मना किया है।

नन्दन लाचार नजरबाग की ओर लौट पड़ा, कुछ देर विश्राम कर लेने के लिये। धूप मे पैदल चल-चल कर पसीने से बुरा हाल हो गया था। अनुमान किया हुँकार अपने हैड आफिस से रुपया लेकर आया होगा। संध्या रुपया मिल ही जायगा। खाट पर लेटते ही नींद आ गयी। नींद टूटी तो खिड़की से नजर

बाहर जाने से खयाल आया—मकान मालिक लौटता ही होगा। नन्दन किराया चुका देने लायक रुपया पाये बिना मालिक से सामना नहीं चाहता था। तुरन्त किवाड़ों पर ताला कर चल दिया।

गली से निकल रहा था तो फिर भरत पनवाड़ी की दुकान पर सिगरेट पीता दिखायी दे गया। नन्दन उसे अनदेखा करके निकल जाना चाहता था परन्तु पनवाड़ी ने पुकार लिया—"भैया! आपने कहा था, सोम निबटा देंगे। आज जरूरत है।" सदा हंसमुख पनवाड़ी के मुख पर गम्भीरता और भरत की नजर से नन्दन को आशंका हुई—इसे भरत ने कुछ समझाया है। लड़के को नीचा दिखाने के लिये रुखाई से पूछ लिया, "तुम्हारा कितना बाकी है?"

"आपको तो मालूम ही है, दो रुपये नब्बे पैसे।" नन्दन ने तीन रुपये पनवाड़ी की ओर फ़ेंक दिये, पान-सिगरेट कुछ नहीं लिया।

नन्दन लालबाग पहुँचा तो हुँकार फिर बाहर चला गया था और लौटने के समय का कुछ पता न था। यह अच्छा तमाशा है! नन्दन खीझ गया। फिर याद आया—परामर्श के लिये हरिहर जी के यहां भी जाना था, उन्हीं के यहां हो जाये। उनका मकान चौना बाजार मे समीप था। नौकर के सम्मुख आत्म-सम्मान बनाये रखने के लिये रखने के लिये कह दिया—"हुँकार जी आयें तो बता देना, हम घन्टे-डेढ़ तक फिर आयेंगे। इन्तजार करें, जरूरी काम है।"

हरिहरजी नयी पीढ़ी के साहित्यिक नहीं हैं। बारह वर्ष से सेक्रेटेरियेट में क्लर्की करते हैं और साहित्य साधना भी। गम्भीर, व्यावहारिक गृहस्थ हैं। घर पर ऐसा साहित्यिक कार्य करते हैं जिससे यश की अपेक्षा अर्थ प्राप्त हो सके। उनके मराठी से अनूदित दो उपन्यास और अंग्रेजी से बाल-कथाओं का एक संग्रह और ग्राम पुस्तकालयों के लिये जापानी कृषि पद्धति एक छोटी पुस्तक प्रकाशित हो चुकी हैं। नगर के प्रकाशकों से उनका सम्पर्क है। उन्होंने नन्दन को आदर से चाय पिलायी और भरोसे के दो प्रकाशकों का परिचय दिया। सावधान भी कर दिया—पारिश्रमिक देने में झमेला जरूर करेंगे। पुस्तक छप जाने पर यदि पीछा करते रहोगे तो छः मास-एक बरस में क़िश्तों से वसूल हो जाय तो गनीमत। प्रकाशक को स्वयं कोई काम कहीं सबमिशन के लिये करवाना हो तो

पेशगी दे सकता है। हरिहरजी अमीनाबाद जा रहे थे। नन्दन उनके साथ हो लिया। हरिहर जी के साथ दो प्रकाशकों के यहां गया। इस समय साहित्यिक माल की जरूरत नही थी। पाठ्य पुस्तक का सीजन था।

नन्दन कैसरबाग की राह लालबाग की ओर लौट रहा था तो आठ बज रहे थे। तन्दूर से उठती रोटियों की महक ने भूख को उत्तेजित कर दिया। उसने मन मार लिया—पहले हुँकार से रुपया वसूल लूं। कहीं फिर न टरक जाये। अभी जेब में छः ही रुपये है। सुबह सागर से कुछ मिलने से पहले और कल पुलक से मुलाकात से पहले जैसी अवस्था हो गयी थी।

हुँकार की बैठक का दरवाजा अब भी बन्द था परन्तु दरवाजे के दायें खिड़की पर लगे पर्दे के भीतर से प्रकाश छन रहा था। बरामदे में जाने पर भीतर से बात-चीत और कोमल कंठ की किलक का आभास भी मिला। नन्दन पल भर सहमा और फिर उसने दरवाजे पर दस्तक दे दी।

भीतर मौन हो गया। आधे मिनट में बगल से नौकर ने आकर कहा—"इस बखत साहब जरूरी काम कर रहे हैं। फिर आइयेगा।"

नन्दन का क्रोध उबल पड़ा—"फिर का क्या मतलब ?" उसने किवाड़ पर और जोर से दस्तक दे दी। नौकर उसका हाथ रोकने के लिये आगे बढ़ा।

"पीछे हटो !" नन्दन ने उसे डांट दिया।

किवाड़ खुले। केवल एक आदमी के निकल सकने भर के लिये दरवाजा खोल कर हुँकार बाहर निकला और किवाड़ मूंद लिया—"यह क्या बत्तमीजी है ?" वह क्रोध में बोला। नन्दन को रम की हबक मालूम हुई।

नन्दन ने भी क्रोध में फटकारा—"बत्तमीजी आप कर रहे हैं। बीस बार वायदा कर चुके हैं। हम रुपया ले कर जायेंगे।"

"कैसा वायदा ? कैसा रुपया ?" हुँकार ने झल्लाहट मे विस्मय प्रकट किया।

"कैसा रुपया ?" नन्दन क्रोध में बौखला गया—"मार्च की छः को सत्तर उधार लिये, तीन दिन में लौटाने के प्रामिस पर। इतनी बार कल-परसों कल-परसों का वायदा किया। अब भूल गया। हम ले के जायगे।"

"हमने तुमसे रुपया लिया ?" हुँकार ने ऊंचे स्वर में ललकारा, "साले भाग

पी है ? भागो यहां से। नही अभी पलस्तर करा देंगे।"

"शराब मे धुत तुम हो। नशे में उधार से इंकार कर रहे हो, शर्म नही आती।" हुँकार बदन में नन्दन से इक्कीस पड़ता है परन्तु नन्दन क्रोध और दुस्साहस में हाथापाई के लिये तैयार हो गया।

कमरे के किवाड़ फिर जरा खुले और दूसरा जवान निकल आया—"क्या तमाशा है, कौन पागल आ गया है ?"

हुँकार ने नन्दन के सीने पर धक्का दे दिया—"ऐ दमनसिंह, निकालो इस बदमाश को।" नौकर बीच मे आ गया, "साला भांग पी कर बदहवास है। जाने कहां से आ घुसा है ?"

नन्दन का सिर क्रोध से घूम गया था परन्तु इतना नही कि तीन आदमियो से अकेला भिड़ जाता या अनजाने स्थान में चिल्ला कर अपने विरुद्ध भीड़ इकट्ठी कर लेता—"देख लेंगे !" फुकार कर बोला और पीछे हट गया।

हुँकार ने नन्दन की धमकी का जवाब दिया—"हां, देख लेना। बुला ला अपने बाप को। जा अदालत में दावा कर दे।"

हुँकार के मकान से निकलते ही नन्दन की आंखे डबडबा गयी। आंसू रोकने के लिये दांतों से होंठ काट लिये। क्रोध और उद्वेग से सांस चढ़ गयी और नजर धुंधली हो जाने से सड़क पर चलते न बन रहा था। समीप दयानिधान पार्क में जा प्रकाश से बच एक बेंच पर बैठ गया।

अंधेरे में बेंच पर कुछ मिनट बैठ लेने से नन्दन की सांस सम हुई और मस्तिष्क कुछ सोचने लायक। लेकिन सोच क्या सकता था, सब भरोसा हुँकार से सत्तर रुपये मिलने पर ही था। मकान मालिक को तीस और 'निर्मल' को बीस दे देने से एक मास का सहारा हो जाता। महीने भर का समय बहुत होता है, कुछ कर ही लेता, परन्तु अब ! उसने साहस के प्रतीक में दोनों बांहें सीने पर बांध ली और उपाय सोचने लगा।

कार्पोरेशन के क्लाक टावर से नौ की टंकार गूंजने लगी। नन्दन बेंच से उठ कर सड़क पर आ गया। उसे 'जगजीवन' के उपसम्पादक सक्सेना जी के सौजन्य और अपने प्रति सहानुभूति पर विश्वास था। आशा थी, इस समय घर

पर होंगे; इससे पहले क्या सो जाते होंगे। वह दो मील दूर नादानमहल रो पर उनके मकान पर पहुँचा। सक्सेना जी ने उसे सौजन्य से तख्त पर समीप बैठाया।

नन्दन ने बताया उसके साथ बहुत धोखा हुआ है। हुंकार की करतूत बता दी। दिल्ली जा सकने योग्य स्थिति भी नहीं रही। सम्पादकीय में न सही 'जगजीवन' प्रेस में या कहीं भी केवल प्रूफरीडरी ही सही, जो भी काम मिल सके, करने के लिये तैयार है।

सक्सेना जी ने सम्वेदना से कहा—"प्रेस में हमारा कुछ भी दखल नहीं है और कहीं ऐसा प्रभाव भी नहीं। हम किसी से कहें और मानी न जाये, ऐसा करने को हमसे मत कहो।"

नन्दन उनकी सहानुभूति के लिये आभार प्रकट कर उठने को हुआ। उन्होंने उसे पल भर रुकने के लिये कहा। भीतर जाकर लौटे तो दस रुपये का नोट उसकी ओर बढ़ा दिया—"अभी काम चलाओ। तब तक तुम कोई उपाय कर ही लोगे।"

नन्दन दान स्वीकार न कर सका—"आपकी कृपा से अभी कुछ है। आवश्यकता पड़ने पर निवेदन करूंगा।"

नन्दन नजरबाग पहुँचा तो ग्यारह बज चुके थे। ऐसे समय मकान मालिक से सामने होने की आशंका नहीं थी, चिन्ता थी प्रातः उसे क्या जवाब देगा। मकान के समीप आते ही चाभी जेब से निकाल ली। ताला खोलने के लिये झुका तो हैरान। उसके ताले के साथ ही एक मोटा अलीगढ़ ताला और लगा दिया गया था।

नन्दन ने विकट स्थिति पर कुछ क्षण विचार किया। साहस बांध कर मकान मालिक के भीतर से मुंदे दरवाजे पर जोर से दस्तक दी। भरत और उसका पिता दोनों निकल आये। नन्दन ने क्रोध प्रकट किया—"यह क्या हरकत की है आपने?"

मकान मालिक ने भी क्रुद्ध उत्तर दिया—"भलमनसाहत की एक हद होती है। तीन महीने के पैंतालीस दे दो और अपना बोरिया-बिस्तर उठा ले जाओ।

हमें कमरे की खुद जरूरत है।"

"यह तो कोई कायदा नहीं है।" नन्दन तनकर बोला "आपको कमरे की जरूरत है या आपका किराया बकाया है तो इजेक्टमेंट के लिये हम पर दावा कीजिये। दूसरे के सामान पर ताला लगा दिया, यह कोई कानून नहीं है।"

"हमने ताला लगाया है।" मकान मालिक ने धौंस दी, "यह कानूनन जुर्म है तो दावा तुम कर दो।"

"रुपया हमारे बक्से में है, हम निकालें कैसे?" नन्दन ने मकान मालिक को निरुत्तर कर सकने के लिये प्रश्न किया।

"जरूर होगा। हमने निकाल नहीं लिया। तुम्हारा ताला भी मौजूद है।" मकान मालिक इतमीनान से बोला, "हमारा पैंतालीस हमारे हाथ में दे दो। अपना हजार खुद रखो।"

"रुपया हम जेब में लिये फिरते है। ताला खोले बिना कैसे दे दें?"

"जाओ थाने मे रपट कर दो। पुलिस बुला लाओ। उनके सामने अपना माल निकाल कर हमारा किराया चुकता कर चले जाओ।" मकान मालिक भीतर जाने के लिये मुड़ गया।

"बहुत अच्छा, तुम्हें भी मजा चखा देंगे।" नन्दन ने होंठ चबाकर मकान मालिक को तो धमका दिया परन्तु उसके अन्याय के विरोध में गुहार करता तो मुहल्ले के विद्रूप का पात्र बनता।

सड़क पर आकर नन्दन ने सोचा—अब जाये कहां?""जिस साले को देखो, पुलिस, अदालत, दावे, कानून की धौंस देता है। जैसे पुलिस, अदालत, कानून उन्हीं के हक में है। पर अब जाये कहां? सड़क पर निष्क्रिय कैसे खड़ा रहता। मुख कैसरबाग की ओर था, कदम उसी ओर उठने लगे। रात गहरी और सड़कें सूनी हो रही थीं। जगह-जगह लाठी हाथ में लिये रात की ड्यूटी के सिपाही दिखायी देने लगे थे। रात किसके यहां काटे?""पुलक के पास एक ही कोठरी थी, बीबी-बच्चे के साथ सो रहा होगा। सेक्रेटेरियेट में क्लर्क सहपाठी माहौर का मकान समीप ही था। वह भी बीबी-बच्चे वाला और रहने के लिये मात्र एक कोठरी। जगह थी हुंकार के पास""मस्तिष्क में हुंकार के प्रति घृणा से कई

गालियां आ गयीं। कदम-कदम बढ़ता विक्टोरिया पार्क पहुँच गया। नगर विनोदस्थली सूनी हो चुकी थी। बड़ी-बड़ी बिजलियां बुझ चुकी थीं। छंटी घास के हरे-हरे मैदानों में पड़ी बेंचें सूनी थीं। नन्दन निराशा का दीर्घ श्वास लेकर एक बेंच पर लेट गया। सिर चकरा रहा था। उसने आंखें बांह से ढंक कर मूंद लीं।

"कौन है, उठो।" और पेट पर लाठी का कोंचा। नन्दन झपट कर उठ बैठा। सामने लाठीधारी दो कान्स्टेबल।

"....." एक सिपाही ने वजनी गाली दी —"आवारा, बदमाश, यहां तुम्हारे ससुर ने तुम्हारे लिये सेज सजायी है ?....चलो कोतवाली।"

नन्दन का मस्तिष्क सहसा स्पष्ट हो गया। कानूनी गिरफ्त के ध्यान से अपमान निगल कर बोला —"हवलदार ढंग से बात करो। बेकार, आवारागर्द का क्या मतलब ! हम जरा दिमागी परेशानी की वजह से कुछ देर के लिये आ बैठे थे। पार्क में बेंच पर बैठना कानूनन जुर्म नहीं है।"

सिपाही उसकी ओर विद्रूप की मुस्कराहट से घूर रहे थे—"दूंगा साले का एक झांपड़।" सिपाही ने हाथ उठाया, "आवारा हरामी, हमें कानून सिखाता है।" नन्दन उसके हाथ की पहुँच से परे हटा।

दूसरे सिपाही ने कंधे पर जनेऊ की तरह पड़ी रस्सी में लगी हथकड़ी आगे बढ़ायी—"इधर आ साले। कोतवाली में तुझे सब कानून मालूम हो जायगा।"

"सुनिये...." नन्दन और पीछे हटा।

लाठी का एक हुचका कन्धे पर लगा—"बकवाद मत करो, हाथ बढ़ाओ।"

"आप सुनिये........" नन्दन ने क्रोध का उबाल रोका। सिपाही दो थे, लाठियां लिये और उनके पीछे कानूनन और सरकार की असीम शक्ति, "आप को परेशानी की जरूरत नहीं। हम अपने मकान चले जा रहे हैं।"

एक सिपाही ने उसके कुर्ते की पट्टी पर लगे फाउन्टेनपेन की ओर विद्रूप किया—"वाह, मुंशी जी कलम लगाये हैं। कानूनी आदमी हैं।"

'अरे यह आठ दस आने के कलम अब सब नाऊ-धोबी लगाये फिरते हैं।" दूसरा सिपाही बोला और लपक कर नन्दन की बांह पकड़ ली, "निकाल जेब में क्या है, ब्लेड, कंघा ? जेब-कट साला।"

नन्दन ने अपनी शराफत का प्रमाण देने के लिये तुरन्त दोनों जेबों की सम्पत्ति निकाल कर दिखा दी —चारमीनार की डिबिया, छः रुपये तीस पैसे।

एक सिपाही ने रुपये और पैसे उसके हाथ से ले लिये और तसल्ली के लिये उसकी दोनों जेबें टटोल कर देख ली। रुपये अपनी मुट्ठी में दबा कर बोला—"चलो कोतवाली। सीधे से चले चलो, नहीं तो यह चूड़ी पहन कर चलोगे।"

"हवलदार साहब, हम आवारा नहीं हैं।" नन्दन गिड़गिड़ाया, "हमारी इज्जत का खयाल कीजिये। आप चल कर हमारा मकान देख लीजिये।" किसी तरह का बच पाने का प्रश्न था।

"अच्छा, जा साले भाग जा। आइन्दा ऐसी हरकत मत करना।" पहले हुक्का देने वाला सिपाही बोला।

"इज्जत का खयाल है तो चले जाओ चुपचाप यहां से। मकान पर जाकर जोरू के संग ऐश करो।" दूसरे सिपाही ने केसरबाग की ओर लाठी से संकेत किया।

"···जोरू से लड़ कर आया होगा।" पहला सिपाही रसिकता से बोला, "जाकर गोड़ दबा साली के।"

नन्दन क्रोध और गले में भर आये आंसू निगल कर गिड़गिड़ाया—"हवलदार, हमारी यही कुल जमा पूंजी है।"

"तो फिर चल साले मा·······कोतवाली।" सिपाही ने डांटा, "हम लिहाज कर रहे हैं, यह जबान लड़ा रहा है।"

नन्दन की आंखें डबडबा गयीं। सिर झुकाये केसरबाग की ओर चल दिया। जानता था, कोतवाली में पुलिस जो चाहे कर सकती है। विद्यार्थी संघ के साथियों के साथ तो सीना फुला कर कोतवाली गया था। तब दूसरी स्थिति थी—पुलिस को धमकाने का हौसला था। अब अकेला और आवारगी का इलजाम। पर जाये कहां? जेब में एक पैसा भी शेष नहीं रह गया था। कदम उठाता जा रहा था। बाजार बिल्कुल सूने थे। चलता-चलता चारबाग पहुंच गया। सामने रेलवे स्टेशन दिखायी दिया। खयाल आया—वहां तीसरे दर्जे के

साफिरखाने में पच्चीसियों सो रहे होंगे ।

मुसाफिरखाने में बेंचों पर दो-तीन मुसाफिर अपने थैली-गठरी गोद या गल में दबाये बैठे-बैठे सो-ऊंघ रहे थे । बहुत से मुसाफिर फर्श पर अपने सामान समीप बैठे बतिया रहे थे या कुछ बिछाकर सामान का तकिया बनाये पसरे ए थे । एक बेंच के सिरे पर ड्यूटी का सिपाही ऊंघ रहा था । नन्दन दबे पांव सी बेंच के पीछे जाकर फर्श पर लेट गया । फर्श पर लेट जाने में संकोच न आ । थकावट से पिंडलियां कांपने लगी थीं । लगा, शरण मिल गयी ।

नन्दन मुसाफिरखाने के फर्श पर करवट से लेटा बहुत देर सोचता रहा । रोशनी में उसे जल्दी नींद न आती थी । आंख झपकने लगती तो करवट लेने से टना खट्ट से फर्श पर टकरा जाता और नींद उचट जाती । परेशानी नींद न आ सकने की न थी—चिन्ता थी, कैसे चलेगा ?.......कुछ तो करना ही होगा । थकावट के कारण नींद आ गयी । नींद ऐसी गहरी आयी कि आंखें खुलीं तो सूर्योदय हो चुका था ।

नन्दन लखनऊ स्टेशन से खूब परिचित है । यात्रा तो वह तीसरे दर्जे मे ही करता था परन्तु स्टेशन पर निबटने की जरूरत होती तो तीसरे दर्जे की संडास की गलाजत और दुर्गन्ध से बचने के लिये निधड़क सेकेन्ड क्लास के वेटिंग रूम में चला जाता था । अब अपने मैले-मसले कपड़ों के कारण सेकेन्ड क्लास में जाने का साहस न हुआ । तीसरे दर्जे के संडास में ही गया । मुसाफिरखाने में स्टाल से चाय की और तेल में तली पूरी-कचौरी की गंध अनुभव होने लगी । कुछ लोग अंगोछा बिछा कर पूरी या सत्तू का कलेवा कर रहे थे । साधन न होने के कारण नन्दन ने उस ओर ध्यान न दिया ।

लखनऊ में बेकारों के लिये जीविका की और अशरणों के शरण-स्थानों की कमी हो परन्तु सैर और दिल बहलाव के स्थानों की कमी नहीं है । खूब तड़के सुबह वह कहां जा सकता था । मुसाफिरखाने से स्टेशन रोड पर पार्क की ओर चल दिया । सड़क पर रेलवे-वर्कशाप तथा अन्य कारखानों के मजदूर कटोरदानों या छोटी पोटलियों में दोपहर का आहार लिये अपने कामों पर जा रहे थे । नन्दन को वे बहुत सुखी निश्चिन्त जान पड़े । वह कोई दस्तकारी या हाथ का

काम जानता नहीं जिसके सहारे काम खोज सकने का भरोसा होता। वह है इन्टेलेक्चुअल। केवल ऐसा काम कर सकता है जिसे पढ़ा-लिखा आदमी, बिना किसी दीक्षा या ट्रेनिंग के कर सकता है।

स्टेशन रोड पार्क के बालोद्यान में कुछ बच्चे खेल रहे थे। तीन-चार दाइयां खटोला-गाड़ियों में गोद के बच्चों को पार्क में घुमा रही थीं। कहीं कोई संतरी सिपाही नहीं था। नन्दन एक खाली बेंच पर बैठ गया। एक बेंच पर दो वृत्ति-प्राप्त प्रौढ़ ऊंचे स्वर मे अपने अनुभवों की चर्चा कर रहे थे। समीप ही अन्य प्रौढ़ गुटके से पाठ कर रहे थे। एक जवान घास पर योग-व्यायाम के आसन कर रहा था। नन्दन को यह सब विद्रूप लग रहा था। पेट भरा होने पर यहां कोई भी मन बहलाव और खाया हुआ पचाने के लिये निधड़क बैठ सकता है परन्तु अशरण होने पर संकट का समय यहां नहीं बिता सकता। नौ बजने की प्रतीक्षा में था। कहीं तो किसी प्रेस में प्रूफ रीडर का, न हो चपरासी का ही काम मिल जायेगा। दिन भर काम करके संध्या कहेगा—मजदूरी का आधा ही इस समय दे दिया जाये। रात उन्हीं के यहां काट देगा। जीवन में ऐसे अवसर भी आ सकते हैं''''' ओफ।

धूप तेज होने पर पार्क सूना होने लगा। दो दाइयां खटोला-गाड़ियों को वृक्ष के नीचे खड़ी किये अब भी बात में मगन थीं। अपनी मालकिनों को सराह रही थीं''''''''''"मेम साहब का दिल बहुत बड़ा है! देखो न यह साड़ी, बिल्कुल नयी। कहने लगी हमें रंग पसन्द नहीं, सखी तुम पहन डालो।" दूसरी ने अपनी मालकिन को सराहा—"बहिना, खान्दानी लोगों की बात ही ऐसी होती है। हम जहां पहले थीं, रोज चख-चख रहती थी। दूध कहां गया। यहां मिठाई रखी थी, कहां गयी। बड़े कमीने लोग थे। ये तो ऐसी दरिया दिल हैं, खुद चाय बाद में पीती हैं, पहले नौकरों को दो-दो पराठे और चाय दिला देती हैं। नन्दन को पराठों की सुगन्ध अनुभव होने लगी।''''''''''आहार की कल्पना में कितना अनिर्वचनीय आनन्द हो सकता है।

नन्दन नौ बजने का अनुमान कर शहर मे चल दिया। छोटे प्रेसों में सुबह-सुबह किसी को उसकी बात सुनने की भी फुर्सत न थी। पांच जगह यही अनुभव

हुआ। एक अच्छे बड़े प्रेस मे प्रूफ-रीडर की जरूरत थी परन्तु प्रश्न था, पहले काम किया है। काम के अनुभव और व्यवहार का प्रमाणपत्र जरूरी था। उस से भी बडे प्रेस में दरबान ने नन्दन को भीतर नही जाने दिया। खयालीगंज में एक और बड़े प्रेस का बोर्ड दिखायी दिया। यह आठवां प्रेस था। यहां मालिक सात दिन अवैतनिक काम देखना चाहते थे। पूछ-ताछ के लिये और भटकने का सामर्थ्य न रहा। चौबीस घन्टे से निराहार था। चाय भी पिछली संध्या हरिहरजी के ही यहां पी थी। सुबह से भूख दबा सकने के लिये दो बार पेट को जल से भर कर धोखा देने का यत्न कर चुका था। अब आतें कुलबुलाने लगी थीं। पिछले दिन भी उसे काफी पैदल दौड़-भाग करनी पडी थी। सुबह-सुबह नौ बजे से पल भर के लिये भी बैठे बिना लगातार चल रहा था। अब घुटने कांपने और टखने दरद करने लगे थे। धूप और गरमी से सिर चकरा रहा था। उसने गली के मुहाने पर नल से फिर कुछ जल पी लिया। कुछ समय जरा बैठने या लेटने की जरूरत थी परन्तु कहा! बस नवाबअली रोड से विक्टोरिया पार्क की ओर चल दिया।

नन्दन वृक्षो के नीचे एक बेंच पर लेट गया। सामने कुछ दूर वह बेंच भी दिखायी दे रही थी जिस पर गत सध्या लेटने के अपराध में उसकी जेब लुट गयी थी और अपमान सहना पड़ा। सोचा यदि इस समय सिपाही आ पकड़े तो हवालात में बन्द होने से कोई बचाव नही। परन्तु इस समय उसके वहां लेटे रहने पर कानून और पुलिस को आपत्ति न थी।.......सरकार को लोगो के बेकार और आवारा फिरने पर आपत्ति है परन्तु सरकार काम देने के लिये जिम्मेवार नहीं। सरकार को बेकारों के जीवित रहने पर आपत्ति क्यों नहीं? नहीं, सरकार उन्हें जेल मे बन्द करके खाना खिलाती है लेकिन जेल से छूटने के बाद?........क्या जीविका मिल जाती है?........क्यों नहीं, यदि मजदूरी करने के लिये भी हिम्मत हो।....देहात से आये अनपढ़-अनाड़ी भी पेट भर लेते हैं। भूल हुई। सुबह अमीनाबाद की मजदूर मण्डी में जा खड़ा होता तो किसी भी मजदूरी से सांझ तक खाने के लिये रुपया-डेढ रुपया मिल जाता परन्तु ऐसी भूख और कमजोरी मे ईंट या टोकरी ढोने का काम कैसे हो सकेगा? घरेलू काम

के लिये तो किसी कारीगरी या ट्रेनिंग की जरूरत नही। सुबह पार्क में दाइयों की आपसी बातचीत याद आने लगी।""इस स्थिति में घरेलू काम की नौकरी ही मिल जावे। दाल-चावल, चपाती-तरकारी कई बार बनायी है। शुरू मे बहुत अच्छी न बना सके, दो-तीन दिन मे सब ठीक हो जायगा। इस समय भी कहीं लग जाये, रात तो खाने को मिल सकेगा। इस कल्पना से भूख की व्याकुलता बढ गयी।""कहीं किसी भी हालत मे बैठने और पेट भरने का सहारा हो जाये तो सोच सकने का अवसर हो।

प्रश्न था—घरेलू नौकरी की तलाश कहां करे? फैजाबाद रोड पर यूनिवर्सिटी में पढ़ते समय, चार-एक बरस पहले कभी गया था। जानता था, उधर कोठी-बंगलों की, नौकर रखने वाले लोगों की बस्ती है। उठ कर उस ओर चल दिया। दो कोठियों मे इनकार सुनने के बाद तीसरी कोठी के माली ने बताया, खाना बनाने वाले आदमी की जरूरत है, झाड़ू-बुहारी और सफ़ाई भी करनी होगी। नन्दन को स्वीकार था।

माली से समाचार पाकर मालकिन, हृष्ट-पुष्ट मेम साहिबा, बरामदे मे निकलीं। उन्होने नन्दन को सिर से पांव तक गौर से देखा—"घर का काम जानते हो? खाना बना लोगे?"

"जी बना लेंगे, सब काम करेंगे।" नन्दन ने सेवकोचित विनय से विश्वास दिलाया।

"कौन जात हो?"

"बाम्हन।"

"क्या रसोई बना लेते हो?"

"यही दाल-भात, रोटी-तरकारी।"

मेम साहब ने उसे गौर से देखा—"पढ़ना-लिखना जानते हो?"

"जी, मामूली।" नन्दन समझ गया यह प्रश्न उसके सीने पर टंके कलम के कारण था।

"पहले कहां काम करते थे, वहा क्यों छोड़ दिया?"

"जी यहां नहीं किया" नन्दन ने कुछ झिझक कर उत्तर दिया

"किस गांव-जिले के हो ?"

"जी, बिजनौर।"

"यहां कोई तुम्हारी जान-पहचान का, जमानत देने वाला है ?"

नन्दन कुछ झिझका—"आप काम देख कर तनखवाह दीजियेगा।"

मेम साहब ने सिर हिला दिया—"न न, हम बिना जान-पहचान, जमानत के आदमी नहीं रखेंगे। हम भुगत चुके हैं।" वे भीतर लौट गयीं।

नन्दन निराशा का निश्वास लेकर कोठी से निकल गया। सोचा, पढ़े-लिखे होने के अनुमान से ही उस पर सन्देह हुआ—जमानत जरूरी समझी गयी। कलम को फेंक न दे, अब इससे क्या लाभ ? कलम उसका अच्छा था, चार रुपये में खरीदा था। मालकिन के शब्द—'हम भुगत चुके हैं' याद आ गये—दौलत हो तो खतरा, न हो तो""घरेलू काम की नौकरी के लिये वैसे नौकरों की बिरादरी की सिफारिश चाहिये। वह बदरिया पुल की ओर लौटने लगा। स्टेडियम के सामने पार्क में नल से जल पिया और निढाल हो घने वृक्षों के नीचे लेटा चिन्ता करता रहा, खाना कहां से मिले, रात कैसे कटेगी ? लेटने से भूख ज्यादा मालूम हो रही थी। एक और प्रेस का नाम याद आ गया—वहां भी पूछ देखे। वह उठ कर कैसरबाग की ओर चल दिया। दोपहर ढल जाने से सड़कों-बाजारों में आमद-रफ्त बढ़ गयी थी। आशंका हुई, ऐसी अवस्था में कोई परिचित न मिल जाये। कैसरबाग के गोले में कदम रख रहा था, जेल की जालीदार बस सामने से गुजर गयी। बस अभियुक्तों को कचहरी से वापस जेल ले जा रही थी। कैदी हथकड़ियां पहने थे परन्तु त्रस्त नहीं लग रहे थे""भय गिरफ्तारी से पहले ही लगता है। चार बरस पूर्व वह भी इस तरह, ऐसी बस में जेल गया था। वह और उसके साथी राजनीतिक अभियुक्त माने गये थे। हथकड़ियां नहीं पहनायी गयी थीं। वे लोग जेल जाते समय जनता का ध्यान आकर्षित करने के लिये निधड़क नारे लगा रहे थे—'इन्कलाब जिन्दाबाद ! तानाशाही मुर्दाबाद ! दफ़ा एक सौ चवालीस—नहीं चलगी ! विद्यार्थी-संघ जिन्दाबाद !' कल रात हथकड़ी देख कर और कोतवाली ले जाये जाने के भय से कैसे कांप गया था।"" आज रात क्या होगा ? रात जेब में छः रुपये न होते तो अब इस बस में होता।""

रोटी मिल गयी होती, परन्तु रोजी ?····रोटी से मुश्किल है रोजी····

सामने पुलक आता दिखाई दिया, नजरें मिल गयीं। लगा, पुलक पुकारने को था, कतरा गया। नन्दन का मन ग्लानि से भर गया—नहीं, किसी से बोलने की जरूरत नहीं, भूखे मर जाना मंजूर है। वह गर्दन झुकाये चलता गया।

नन्दन शिथिल कदमों को खींचता घसियारी मंडी से चला जा रहा था। खूब बड़े अक्षरों में प्रेस का नाम दिखायी दिया। वह प्रेस के दरवाजे की ओर बढ़ गया। भीतर जाने के लिये कुछ रुकना पड़ा, लोग बाहर आ रहे थे। उसे ध्यान न आया कि आदमी दिन का काम समाप्त करके जा रहे थे। उसने दफ्तर नुमा कमरे में नमस्ते करके काम के लिये प्रार्थना की।

मालिक या मैनेजर की कुर्सी पर बैठे व्यक्ति ने विस्मय की मुस्कान से उसकी ओर देखा—"बहुत समय से आये हो।"

नन्दन ने परिहास समझा—"आप काम दें तो कल सुबह, जिस समय हुक्म हो, हाजिर हो सकता हूँ।"

"नहीं भाई, काम नहीं है।" उत्तर देने वाले ने नजर झुका ली।

नन्दन कदम रगड़ते-रगड़ते स्टेशन रोड पर पहुँचा गया। धूप समाप्त हो चुकी थी। वह फिर पार्क में चला गया। प्रातः की अपेक्षा विनोद और बहलाव के लिये अधिक भीड़ थी। बालोद्यान में बच्चे भी अधिक थे। बच्चे कूदने-फांदने, झूलने-फिसलने के खेलों पर किलकारियां मार-मार कर खेल रहे थे। उसे किलकारियां और उल्लास अप्रिय लग रहे थे।····सरकार खाते-पीते खुशहाल लोगों के लिये खेल-कूद, विनोद का प्रबन्ध करना भी आवश्यक समझती है, मुफ्त शिक्षा और मुफ्त चिकित्सा का प्रबन्ध भी करती है परन्तु बेकार और निराश्रयों के लिये जीविका और आश्रय की चिन्ता नहीं। स्वयं अपनी प्रतारणा की—मुफ्त रोटी और आश्रय की इच्छा क्यों की जाये। मैं क्या अपाहिज हूँ ?····सरकार को जैसे काम की जरूरत हो, उसके लिये जीविका भी देती है।····इस समय तो मैं सभी कुछ करने के लिये तैयार हूँ। कैसरबाग में दिखायी दी बस याद आ गयी····अपराधियों के लिये रोटी-कम्बल-कोठरी का इन्तजाम हो सकता है·· क्योंकि सरकार या जनता को उनसे भय होता है ····यहाँ ही जाना होगा।

क्या अपराध कर सकता हूं ?""नही कर सकता तो मर जाना चाहिये।""
थकावट से आंखे झपक गयी।

नन्दन की आंख खुल गयी—माथे, हाथो और पाव पर बहुत से मच्छरों ने काट लिया था। अनुभव हुआ सिर में दरद। दरद से सिर झटक कर मच्छरो के दंशों को सहलाते हुए चारों ओर देखा—पार्क सूना हो गया था। रात पड़ गयी थी।""अब सिपाही आकर परेशान करेंगे""करें। हवालात ही तो ले जायेंगे फिर भी गिरफ्तारी से डर लगा और मच्छर भी तो असह्य थे। नन्दन स्टेशन के मुसाफिरखाने की ओर चल दिया।

मुसाफिरखाने मे आज दूसरे लोग थे। उनके बैठने-लेटने के स्थानों और ढग में कल की अपेक्षा कुछ भेद था परन्तु आदमी कल से कम न थे। एक बेंच पर दो सिपाही पसर कर बैठे हुए थे। एक हथेली पर चूना-तम्बाकू मल रहा था। नन्दन एक खम्बे के समीप लेटने लायक जगह देख कर बैठा ही था कि सिपाही ने पुकार लिया—"ए कलम वाले मुंशी जी, जरा इधर आओ।"

नन्दन का दिल भय से धड़का—आ गया समय।""आना ही था, प्रतीक्षा थी। सरकार के हुक्म की अवहेलना नही कर सकता था। दीर्घ निश्वास से सिपाही की ओर बढ गया।

"टिकट दिखाओ।" सिपाही ने धमकाया।

"अभी नही लिया।" जैसे बच सकने की कोई आशा शेष हो।

"अभी नहीं लिया !" सिपाही ने अपने अधिकार को अपनी नजरों से प्रकट किया, "सामान गठरी-मुठरी कहां है ?"

"नहीं है।"

"टिकट नहीं, गठरी-मुठरी नहीं तो मुसाफिरखाने का गश्त-पर्चा बनाने आया है ?" सिपाही ने विद्रूप किया।

"ऐसे ही जरा लेटेंगे।" नन्दन ने विवशता प्रकट की।

"जरा लेटेंगे।" सिपाही ने और जोर से धमकाया—"साले उठायीगिरी, जेबकटी की तलाश में आया है। भाग यहां से।" सिपाही ने अपनी शक्ति का प्रतीक डंडा दिखाया।

"हवलदार साहब, हम चोर-उठायीगीर नहीं हैं।" नन्दन ने विनय से कहा, "कहां जायें ? इस वक्त पार्क में लेटना मना है।"

"पार्क में मना है तो यह तेरे बाप की चोपाल है। भागता है कि हवालात में बन्द करें।"

"पड़ा रहने दो गरीब को" दूसरा सिपाही हथेली पर तम्बाकू बटोरते हुए बोला। "सरी मांगने-खाने आया है। अब पढ़ो-लिखों के यही हाल हैं।"

धमकाने वाला सिपाही साथी की सिफ़ारिश से नरम पड़ गया—"अच्छा, पड़ा रह। हम नजर रखे हैं। कोई बदमाशी की तो""मे डंडा कर देंगे।"

नन्दन खम्भे के समीप जा बांह का तकिया बना कर लेट गया। पार्क से दो-ढाई घण्टे की झपकी लेकर आया था। आंतों की कुलबुलाहट व्याकुल कर रही थी। उठ कर कुछ जल पिया और आंखें मूंद लीं।

नन्दन की नींद टूटी तो मुसाफिरखाने में सुबह की तिरछी किरणें आ रही थीं। शरीर सर्वथा निःशक्त लगा। होंठों पर सूख कर पपड़ी जम गयी थी। उठने का सामर्थ्य न था। कुछ समय निष्क्रिय पड़ा रहा। धूप की ओर नजर जाने से भूख और भी असह्य जान पड़ी। पेट में कुछ भी आधार गये बयालीस घन्टे बीत चुके थे। न रहा गया तो उठ कर नल से जल पी लिया। खाली पेट की खोह को वश करने के लिये जल कुछ अधिक पी लिया था। मुसाफिरखाने की कुर्सी के चौड़े जीने से उतर रहा था पेट से पानी उलट गया। लगा, सिर जैसे कंधे से उड़ गया। सिर को दोनों हाथों से पकड़ कर बैठ गया।

"यह क्या बत्तमीजी कर रहा है ?" सिपाही ने डांटा। ड्यूटी का सिपाही बदल गया था। उसने समीप आकर धमकाया, "भुक्कड़ों को मुफ्त का मिल जाता है तो ढेरों भकोस लेते हैं और फिर उलटते फिरते हैं। साफ़ कर इस जगह को, नहीं हड्डी-पसली तोड़ दूंगा।"

नन्दन ने एक नजर सिपाही की ओर देखा और निष्क्रिय बैठा रहा"" सिपाही उससे यह नहीं करा सकेगा।

"भाग यहां से। यह मरीजों की जगह नहीं है। हैजा फैलाने आया है।" सिपाही ने अपने हुक्म का बेतुकापन समझ कर हुक्म बदला। नन्दन को सिर

में चक्कर के कारण सब कुछ घूमता हुआ दिखायी दे रहा था। वह खड़ा नहीं हो सकता था, बैठा रहा। वह सिपाही का हुक्म अनसुना कर लेट गया। सिपाही अपने सम्मान की रक्षा के लिये बड़बड़ाता हुआ दूसरी ओर ध्यान देने के लिये चला गया।

नन्दन का मन कुछ स्थिर हुआ तो मुसाफिरखाने की कुर्सी की सीढ़ियों पर लेटे रहना अच्छा न लगा। उठ कर छोटे-छोटे कदमों से स्टेशन रोड पर पहुँचा और कदम जिस ओर उठे चलता गया। सोच रहा था—खाली पेट इतना जल नहीं पीना चाहिये था। जेल में अनशन का अनुभव याद आया। दो साथियों ने तीसरे-चौथे दिन क्षुधा से विकल हो इसी प्रकार जल पी लिया था। उनकी ऐसी ही दुर्गति हुई थी। ऐसी अवस्था में जल रुक-रुक कर पीना चाहिये। सामने एम्प्लायमेन्ट एक्सचेन्ज की ऊंची भव्य इमारत पर नजर पड़ी। कल उस पर नजर पड़ती तो""अब तो कुछ भी कर सकने का, चलने और खड़े रहने का भी सामर्थ्य नहीं रहा।""कुछ नहीं रहा।""कुछ नहीं बोगस है। व्यर्थ वहां नाम लिखा कर चार मास प्रतीक्षा करता रहा था।

नन्दन चलने के असामर्थ्य के कारण स्टेशन रोड के पार्क में वृक्षों की छाया में जा लेटा। कुछ देर बाद वहां धूप आ गयी। उठना पड़ा। फिर सड़क पर आ रेंगते कदमों से चलने लगा। उसका चलना निरुद्देश्य था। खड़ा नहीं रह सकता था इसलिये कदम उठा रहा था। वह विधानसभा मार्ग पर था। विधानसभा के सम्मुख सड़क पर गोल आंगन में पहुँचने पर याद आया—लोग दरख्वास्तें दे-दे कर थक जाते हैं तो सुनवाई के लिये इस स्थान पर चटाई या कम्बल बिछा कर अनशन करते हैं। ऐसे लोगों को सड़क पर उपद्रव करने के अपराध में जेल भेज दिया जाता है।"" चल नहीं पा रहा हूँ। यहां ही बैठ जाऊं पर मेरी शिकायत क्या है? शिकायत न हो, जेल में रोटी-कोठरी तो मिलेगी। परन्तु उसे तमाशा बनना मंजूर न था। अखबारों में समाचार छपेगा। 'महाभारत' के सम्पादक, एकाउन्टेन्ट हमने। जेल जाना ही पड़ेगा तो तमाशा बनने की क्या जरूरत है। वह कदम सरकाने लगा।

बड़े डाकखाने के सामने गांधी मूर्ति के चारों ओर बेंचों पर धूप खूब तेज

हो गयी थी। नन्दन तिकोने पार्क में, गांधी मार्ग की ओर घने वृक्षों के नीचे लेट गया। निर्बलता से लगातार सिर चकरा रहा था। धूप मे चल कर आने से आंखों के सामने लाल-पीला कुहासा आ रहा था। आंखे मूंदने पर लाल अंधेरा और उसमें फीके-फीके उड़ते हुए तारे। रेंगती चाल से इतनी दूर आ गया था परन्तु लौट सकना सम्भव न था। अतिनिर्बलता से मस्तिष्क निष्क्रिय होकर तन्द्रा सी अनुभव होने लगती परन्तु भूख की व्यथा तन्द्रा को तोड़ देती और उबकाई आने लगती।

पूर्ण अनशन से बावन-तिरपन घन्टे बीत गये थे। समीप पार्क की सिंचाई के लिये नल था। नल से जल की महीन धार लगातार टपक रही थी। वह तीन-चार बार उठ कर नल से तीन-तीन, चार-चार चुल्लू जल चुसक चुका था। मन चाहता था, पेट भर कर पी ले परन्तु जल उलटने से व्यथा का भय था।

वह छाया के लिये महात्मा गांधी मार्ग की ओर घने वृक्षों के नीचे लेट गया था। नजर पार्क में बने मंडप में खड़ी गांधी जी की दरिद्रवेश, क्षीण काय, लठिया टेके मूर्ति की ओर थी। सोच रहा था''''स्वेच्छा से नैतिक शास्त्र के रूप में अनशन और मजबूरी में अनशन। प्रभावशाली व्यक्ति के अनशन का कितना प्रबल प्रभाव हो सकता है। गांधी जी के अनशन से कांग्रेस सरकार ही नहीं ब्रिटिश सरकार भी दहल जाती थी। आहार पा न सकने के कारण अनशन से मर जाने में कितना तिरस्कार''''।

दिन ढलने लगा। नन्दन आंखें मूंदे अनिवार्य की कल्पना करने लगा—स्टेशन तक लौट जाने का दम शेष न रहा था, लौट जाने से लाभ ? दो तीन घन्टे बाद रात पड़ जायगी। रौंद का सिपाही उसे गिरफ्तार करके कोतवाली के हवालात में बन्द करा देगा। जानता था—हवालात मे बन्द लोगों को छः आने का खाना मिलता है। रौंद के सिपाही से गाली-गलौज सुनकर और धौल-धप्पा खाकर कोतवाली जाने की अपेक्षा स्वयं वहां जाकर आत्म-समर्पण कर दे !''''गाली और मार खाकर कोतवाली जाने से स्वयं जाकर आत्म-समर्पण कर देना बेहतर नहीं ! नन्दन ने कई बार इस औचित्य की कल्पना की परन्तु साहस न होता था। डाकखाने की घडी में साढ़े-छः बज रहे थे। अब रात पड़ने में क्य

देर थी। नन्दन ने दांत पीस कर भूख से कटती आंतों और चकराते सिर की वेदना को वश कर मस्तिष्क को स्थिर किया—बेकाम और आवारा होने से इन्कार कैसे कर सकता हूँ। गिरफ्तारी अनिवार्य है। गाली और मार खाने से लाभ !

वह गहरा सांस लेकर धरती पर हाथों की टेक से उठा। नल से दो चुल्लू जल चूसा और सावधानी से छोटे-छोटे कदम रखता हजरतगंज की ओर चल दिया। उस समय कारों, रिक्शा, साइकिलों और पैदल चलने वालों की भीड़ अधिकतम थी। वह किसी सवारी की चपेट में आ जाने या पैदल से धक्का खा जाने की सावधानी में बहुत धीमे-धीमे चल रहा था।

कोतवाली के फाटक पर आतंक के प्रतीक सशस्त्र संतरी ने डपट कर पूछा —"ए—किधर ?"

"काम है, रिपोर्ट करनी है।" नन्दन ने सूखे गले में थूक निगल कर उत्तर दिया, रुका नहीं।

कोतवाली के भीतर फव्वारे से शोभित आंगन के पीछे बरामदे में बायीं ओर मेज के समीप पड़ी दो कुर्सियों में से एक पर मुंशी हवलदार बैठा था। नन्दन उसी की ओर बढ़ गया। सिपाही ने प्रश्नात्मक दृष्टि उसकी ओर उठायी।

"मैं बेकार हूँ, आवारा घूम रहा हूँ।"

हवलदार विद्रूप से मुस्करा दिया।

मुंशी सिपाही की विद्रूप भरी मुस्कान से नन्दन को चोट लगी।

"कानूनन मुझे गिरफ्तार किया जाना चाहिये।" नन्दन ने विद्रूप की उपेक्षा की।

"हूँ।" सिपाही गम्भीर हो गया, "हमें कानून सिखाने आये हो। सरो, सरकार के सिर हराम का खाना चाहते हो ? निकल जाओ बाहर।"

"आपका फर्ज है बेकार और आवारा लोगों को गिरफ्तार करना।" नन्दन ने अपमान का विरोध किया।

मुंशी का क्रोध उबल पड़ा। माँ-बहन से व्यभिचार की कई गालियों से अपनी शक्ति प्रकट कर उसने धमकाया—"........आया है हमें कानून और फर्ज बताने।"

बेंच पर बैठे सिपाही चौंके—"क्या है हवलदार साहब ?"

सिपाहियों की ओर एक नजर डाल मुंशी कहता गया—"बहन''''सोने पर चवन्नी का कलम टाँक लिया तो हमें कानून-फर्ज बतायेंगे। लगाओ मादर''''को दो जूते और बाहर करो''''।"

सिपाहियों को बेंच से उठने की जरूरत नहीं पड़ी। नन्दन बेकारी में गिरफ्तार हो जाने के अधिकार के लिये मार सहने के लिये तैयार न था। लौट पड़ा।

नन्दन कोतवाली से दुत्कारा जाकर निकला तो उसके कदम फिर गांधी जी की मूर्ति की ओर उठने लगे। मूर्ति को घेरे लान में पहुँच कर उसने चार चुल्लू जल चूस लिया और एक बेंच पर बैठ गया। भूख और उस पर अपमान के लिये क्रोध। मस्तिष्क सोच-विचार के योग्य न रहा। ओंठ चबा कर धीरे-धीरे बोल कर मन की भड़ास निकाल रहा था—बड़े बेइमान साले, पार्क में आराम के लिये बैठे आदमी पर बेकारी और आवारगी की तोहमत लगाकर रिश्वत लेंगे, स्वयं बेकारी और आवारागर्दी में आत्म समर्पण करने गये तो ऐसा अपमान, जैसे हम इनके बाप से भीख मांगने गये थे।''''यहां ही लेटूंगा। दामाद को खुद हाथ पकड़ कर जायेंगे। वह बेंच पर लेट गया। क्षण भर के लिये मस्तिष्क साफ हुआ। गांधी जी की मूर्ति पर नजर जाने से खयाल आया—अपने अनशन को बेकारी की अवस्था में गिरफ्तार किये जाने की मांग घोषित कर दे। परन्तु ऐसी घोषणा के लिये साधन ? प्रोपेगैण्डा और आन्दोलन के बिना अनशन का मूल्य ?

संध्या समय बहुत से लोग दूसरी बेंचों और मूर्ति के चबूतरे पर आ बैठे थे। चबूतरे पर कोई ऊंचे स्वर में लय से रामायण का पाठ कर रहा था। नन्दन आंख मूंदे लेटा रहा''''''जो होता है, हो। उठ कर चलने का सामर्थ्य न था। तन्द्रा में कभी आँखें मुंद जातीं कभी खुल जातीं। रामायण पाठ का स्वर शांत हो गया। भीड़ छंट गयी। नन्दन वैसे ही लेटा रहा। तन्द्रा टूटने पर आंतों में छोह की वेदना और सिर में चक्कर। मच्छर भी काटने लगे परन्तु उपाय क्या था ? कोतवाली या भूख से प्राणान्त'''' ''''निर्बलता से फिर झपकी आने लगी।

बेंच की पीठ के काठ पर खट-खट—"ए, कौन ? उठो ! यह सोने की जगह है !" नन्दन उठ कर बैठ गया । आखिर खुद आये ।

"उठो, अपने डेरे पर जाओ । यहा सोने की इजाजत नहीं है ।"

"डेरा नही है ।" नन्दन ने निधड़क कह दिया ।

"घर-डेरा नहीं है तो बड़े घर चलो ।" सिपाही ने धमकाया, "तुम्हारे ही जैसों की लिये तो सरकार के दस लाख की इमारत खडी की है । उठो ।"

नन्दन सिपाही के साथ चल दिया । सिपाही नन्दन को समीप हजरतगंज की कोतवाली में ही ले गया । उसी मेज के सामने जहां वह स्वयं गया था । अब मुख्य कुर्सी पर खाकी कमीज-पैंट पहने एक जवान सब-इन्स्पेक्टर मौजूद था । मुंशी मेज की बगल मे स्टूल पर रजिस्टर के सामने बैठा था । नन्दन और मुंशी ने एक दूसरे को देखा ।

सिपाही ने सब-इंस्पेक्टर को सैल्यूट कर नन्दन की ओर संकेत किया—"हुजूर, यह पारिक में बेंच पर सो रहा था । कहता है, घर-डेरा कुछ नहीं है ।"

सब-इन्स्पेक्टर ने नन्दन की ओर ध्यान दिये बिना कह दिया—"कर दो बन्द ।"

नन्दन ने मुंशी से आखें मिलायीं—अब क्या कहते हो ?

मुंशी ने नन्दन की चुनोती समझी । सब-इंस्पेक्टर की ओर देखा—"हुजूर, यह साहबजादे तो खुराक और जगह की तलाश में सांझ यहां खुद ही तशरीफ ले आये थे । हमें कानून और फ़र्ज़ बता रहे थे कि इन्हे बेकारी और आवारगी के लिये गिरफ्तार किया जाये । हराम की खाना चाहते हैं । कलम लगाये हैं; पढ़ा-लिखा होगा । हमने कहा—जाओ हाथ-पांव हिलाकर कमाओ-खाओ । यहां बेकारों के लिये मंदिर-धर्मसाला का भंडारा नहीं है ।"

'ओ, यह बात ।" सब-इन्स्पेक्टर ने नन्दन की ओर देखा, "अबे सरकार के सिर खाना-रहना चाहते हो तो कुछ हिम्मत करो । डाका-चोरी करो, किसी की जेब काटो । तुम्हें खुद ही खातिर से लिवा लायेंगे । साले कामचोर होजड़े हराम का ही खाना चाहते हो । भाग जाओ ।"

नन्दन दुस्साहस बांध चुका था, क्रोध भी आ गया—"हराम का ?···मैं

पुलिस में नहीं हूँ। जनाब जेल में मशक्कत ली जाती है। अब खुद आपका सिपाही मुझे पकड़ कर लाया है। मैंने पहले सही इत्तला दे दी थी कि बेकारी में आवारागर्दी कर रहा हूँ।"

सब-इंस्पेक्टर कुर्सी पर सतर्क हो गया। नजर नन्दन के खद्दर के कुर्ते-पाजामे पर गयी। "पुलिस हराम का खाती है। जनाब कांग्रेसी नेता हैं। जेल जाने के लिए सत्याग्रह करने आये हैं।"

"मुझे सत्याग्रह करने की क्या जरूरत है।" नन्दन कुछ सहमा परन्तु कह गया, "आपका फ़र्ज है मुझे दफ़ा एक सौ नौ में गिरफ्तार करना।"

"हमारा फ़र्ज ?" इन्स्पेक्टर ने नन्दन की ओर आँखें तरेंरी और बगल में खड़े सिपाही की ओर देखा—"जरा इसे फर्ज बता दो।"

नन्दन के साथ खड़े सिपाही का हाथ उठा और नन्दन की बांहें भी अपना सिर बचाने के लिये उठीं। नन्दन के शरीर पर चोट न पड़ सकी। मुंशी और सब-इन्स्पेक्टर फुर्ती से सैल्यूट की मुद्रा में खड़े हो गये। सहसा स्तब्धता। एक कार निधड़क आंगन में आ गयी थी। सब-इंस्पेक्टर कार का दरवाजा खुलने से पूर्व ही चुस्ती से उस ओर बढ़ गया और एड़ी मिला कर कार को सैल्यूट दिया।

कार से एक व्यक्ति उतरा। गम्भीर मुद्रा, छरहरा शरीर, सफ़ेद कमीज-पतलून, हाथ में अफ़सर का चिह्न बेटन। वह बरामदे में दायें हाथ सींखचे लगी हवालाती कोठरियों की ओर बढ़ गया। इन्स्पेक्टर उसके साथ-साथ।

बिजली के तेज प्रकाश में नन्दन ने पहचान लिया—पुलिस के सीनियर सुपरिन्टेंडेन्ट अर्जु साहब। पुलिस के वार्षिक परेड उत्सव के लिये पत्र के दफ्तर में पास आये थे। जनवरी का महीना, सम्पादकों को तड़के वहां जाने की इच्छा न थी। नन्दन को पास मिल गया था। अर्जु साहब के विषय में नन्दन ने पहले भी सुना था—पुलिस समाज में प्रह्लाद हैं। सीनियर सुपरिन्टेंडेन्ट होकर भी कार तक नहीं खरीद सके। ड्यूटी के अतिरिक्त पुलिस की गाड़ी का भी उपयोग नहीं करते। समझ गया—अकस्मात निरीक्षण के लिये आये हैं। भरोसा हो गया—अब मार का डर नहीं।

सींखचेदार कोठरी के सामने से साहब का स्वर सुनाई दिया—"तुम्हें खाना

मिला ?""तुम्हें ?" अर्ज साहब ने बरामदे में बायी ओर आते हुए बोर्ड पर लगे कागजों पर नजर डाली, फिर नन्दन की ओर बढ़ गये। मेज पर बडे रजिस्टर में पन्ने उलटे, मुंशी से कुछ पूछा। नन्दन की ओर नजर गयी, "इस जवान का क्या मामला है ?"

"सर," सब-इंस्पेक्टर विनय से मुस्कराया—"यह जेल जाने के लिये सत्याग्रह करने आये हैं।"

अर्ज साहब ने नन्दन की ओर गौर से देखा।

नन्दन विद्रूप से चिढ़ गया। विशेष ध्यान पाने की आशा से अंग्रेजी में बोला—"यह बिलकुल गलत बात है। यह सिपाही मुझे बेकार और आवारा होने की व्यवस्था में गिरफ्तार करके लाया है। यह सही है कि मैंने ७ बजे स्वयं यहाँ आकर इत्तला दे दी थी कि मैं इस समय बेकार और आवारा हूँ। तब इस मुंशी ने मुझे बत्तमीजी से गालियाँ दी और जूते मारने की धमकी देकर निकाल दिया था। मैंने यह कहा था कि मैं बेकार और आवारा हूँ। मुझे दफा एक सौ नौ मे गिरफ्तार कर लेना इनका फ़र्ज है। यह इंस्पेक्टर मुझे चोरी-डकैती या जेबकटी करने की सलाह दे रहे हैं।"

अर्ज साहब कुछ पल गम्भीरता से नन्दन की ओर देखते रहे—"सिपाही जरूर आपको यहां ले आया होगा। इस अफसर को सिपाही की गलती के लिये खेद है। आप क्यो हवालात मे बन्द होना चाहते हैं ?"

"सिपाही ने गलती नहीं की है।" नन्दन ने सूखते होंठ चाट कर आग्रह किया, "यह तथ्य है कि मैं बेकार और आवारा हूँ। ऐसी हालत में मुझे दफा एक सौ नौ में गिरफ्तार करके जेल भेजना पुलिस का कर्तव्य है।"

"पुलिस के फर्ज की चिन्ता के बजाये बताइये आप पुलिस से क्या चाहते हैं ?" साहब ने पूछा।

"चाहता हूँ, पुलिस अपना कानूनी कर्तव्य पूरा करे।"

साहब मुस्कराये—"आप पुलिस के कर्तव्य की चिन्ता छोड़िये, अपनी जरूरत या अधिकार बताइये।"

नन्दन झेंप की विवशता मे कह गया—"जरूरत या अधिकार मेरा यही है

कि मुझे सामर्थ्य के अनुसार जीविका मिले ।"

साहब गम्भीर हो गये—"यह आपका मानवी अधिकार हो सकता है परन्तु खेद है, हमारे देश या समाज में यह कानूनी अधिकार नही है। पुलिस आपके कानूनी अधिकारों की रक्षा के लिये जिम्मेवार है।"

"तो मेरे साथ कानूनी कार्रवाई की जाये।" नन्दन ने आग्रह से कहा।

"कानूनी कार्रवाई से मतलब ?"

"कानून है कि बेकार और आवारा को दफा एक सौ नौ मे गिरफ्तार किया जाये।" नन्दन पुलिस से पाये अपमान का बदला लेने के लिये फूट पड़ा, "जब आदमी गिरफ्तारी से डरता है, पुलिस गिरफ्तार करना चाहती है। परसों मुझे गिरफ्तारी की धमकी देकर मेरी जेब खाली कर ली गयी। अब आत्मसमर्पण कर रहा हूँ तो पुलिस गिरफ्तार करना नही चाहती। विचित्र विडम्बना है।"

"कानून का अभिप्राय है," अर्ज साहब के स्वर मे सहानुभूति का पुट आ गया, "कि बेकार और आवारा व्यक्ति से अपराध की आशंका हो सकती है। स्पष्ट है, आपसे ऐसी आशंका नहीं है।" साहब को एक निकम्मे आदमी को यों मुंह लगते देख कर इन्स्पेक्टर और सिपाही विस्मयस्तब्ध खड़े थे।

नन्दन दयनीय और निरुत्तर बना दिया जाने से बौखला गया—"जरूर है! मैं अपराध कर सकता हूँ।"

"आखिर क्या ?" साहब मुस्कराये।

"मैं आत्महत्या कर लूंगा।"

साहब गम्भीर हो गये। नन्दन को बांह से पकड़ कर कार की ओर ले गये—"आप कुछ समय से बेकार हैं परन्तु आपका पेशा क्या है ?"

"जर्नलिस्ट।" बौखलाहट की जगह नन्दन की आंखे डबडबा गयी।

"आहार कब से नहीं किया ?"

नन्दन ने दांत पीस लिये—"मुझे भीख नहीं चाहिये।"

"आप इस गाड़ी में बैठ जाइये। साहब ने नन्दन को पीठ पर हाथ रख

ड्राइवर ने आगे बढ़ कर विनय से कार का दरवाजा खोल दिया था। नन्दन दांत से होंठ चबाकर पीछे की सीट पर बैठ गया और दामन आंखों पर रख लिया।

अर्ज साहब नन्दन के बराबर बैठ गये। गाड़ी कोतवाली से निकलने पर बोले—"निराशा मे बौखलाहट से उपाय नही हो सकता। दफा एक सौ नौ में सजा पाने का परिणाम होता है, कानूनी धब्बा लग जाना। ईमानदार को साहस भी नही खोना चाहिये। मुझे दो छोटे बच्चों के लिये ट्यूटर की जरूरत है। ट्यूशन मे नाम-मात्र ही दे पाऊंगा परन्तु आहार और क्वार्टर हो जायगा। महीने-डेढ़ महीने मे आप उचित काम ढूढ ही लेंगे।"

नन्दन परास्त हो गया। कानून से नहीं, सौजन्य से। ●

शुरफा

सुदर्शन डेढ़ बरस से दिल्ली यूनिवर्सिटी में पोस्ट पी० एच० डी० रिसर्च कर रहा है। पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सहयोगी रिसर्च स्कालरों से उसकी अच्छी-खासी बेतकल्लुफी हो गयी है। सप्ताह में एक-दो बार कॉफी के लिए जरूर एक साथ बैठते है। मेंटल रिक्रियेशन के लिये डेढ़-दो घंटे गपशप भी हो जाती है। ऐसे अवसर पर सुदर्शन का पंजाबी मित्र दत्ता उसके सलीके और तर्जोअन्दाज को लक्ष्य कर लखनौआ तकल्लुफ़ और शराफ़त पर कटाक्ष करने से नहीं चूकता।

दत्ता के कटाक्षों से संकोच अनुभव न कर सुदर्शन अपने व्यवहार की सराहना के लिए दत्ता को आदाब की अदा और विनीत मुस्कान से धन्यवाद देकर शेर दोहरा देता है—'तकल्लुफ है, शुरफ़ा की निशानी, वो दहकां हैं जो तकल्लुफ नहीं करते।' और कहता है—जनाब, तकल्लुफ़ के मायने हैं खुद पर जब्त या आत्मनियंत्रण। यही कल्चर है; इन्सान और हैवान का फरक।

एक दिन दत्ता ने ठोडी उठाकर उपेक्षा से कहा—"आप शराफ़त के गुमान में जब्त और तकल्लुफ़ निबाहते जाइये, दूसरा जब्र से आपके सिर पर चढ़ बैठे, आपके कपड़े उतरवा ले।"

सुदर्शन बेझिझक बोला—"जनाब, यही तो नजरिये या दृष्टिकोण का अन्तर है। आपके नजदीक रोटी-कपड़े की ही कद्र है, शराफत की नहीं। नहीं सुना आपने—'मैन डज नाट लिव बाई ब्रेड अलोन' !"

दत्ता हंस पड़ा—"अरे वह तो स्पिरिचुअलिज्म आध्यात्मिक नारेबाजी है आप उसे तकल्लुफ़ से चिपका रहे हैं !"

सुदर्शन ने आग्रह किया जी हाँ यह बात वैसे के लिए कही

जनाब यदि समाज रोटी-कपड़े को ही सब कुछ मान ले तो दुर्भिक्ष के जमाने मे लोगों का एक दूसरे को लूट लेना, खा जाना भी जायज हो जायेगा। पर समाज में ऐसा नहीं होता। क्योंकि समाज शराफत और तकल्लुफ़ के उसूलों को मानता है। हम दूसरों की शराफत का भरोसा क्यों नही कर सकते, अपनी जलालत का भरोसा क्यों करना चाहते हैं। यकीन रखिये, कल्चर्ड समाज में शरीफों को जेर नहीं होना पडता। आप शराफत और इखलाक के मय्यार का अन्दाज़ा चाहते है तो एक सच्ची घटना सुना दूं ?"

दोनो ही मित्रों ने उत्सुकता प्रकट की।

कुछ वर्ष पहले तक लखनऊ मे अवध का स्वतंत्र चीफ कोर्ट था। उन दिनों चीफ कोर्ट के एक रजिस्ट्रार थे, नफीस अहमद साहब, खान्दानी रईस और बहुत आलिम। वह शायद उत्तर प्रदेश में पहले शख्स थे जिन्होने लन्दन से एल० एल० डी० किया था। कुछ बरस बैरिस्टरी भी की। बोलते बहुत कम थे और आहिस्ता। लेकिन कानून की व्याख्या और इंटरप्रिटेशन ऐसे करते थे कि शेक्सपियर या कालिदास के पदों के गूढ अर्थ समझा रहे हों। उनकी कानूनी व्याख्याओ और तर्क के कारण चीफकोर्ट के जजों को बाज वक्त नजीर तक की उपेक्षा कर देनी पड़ती। जज और बैरिस्टर उनकी विद्वता की सराहना में उन्हें 'माडर्न प्लेटो' पुकारते थे। और साहब, जैसा दिमाग और सीरत पायी थी, वैसी ही सूरत भी। छरहरा छः फुटा कद। गोरा चिट्टा चेहरा। गालों पर हल्की सुर्खी। महीन तराशी हुई मूंछें। छोटी पतली फ्रेंच कट दाढ़ी, जैसे बैंगन की बेंट उखाड़ कर ठोड़ी पर चिपका ली हो। सदा वेस्ट के साथ डार्क सूट पहनते थे। वेस्ट पर घड़ी की सोने की चैन। शादी उनकी हो गयी होगी सत्रह-अठारह की उम्र मे, जैसे उस जमाने में रईस खान्दानो मे होती थी। विलायत में थे तो विधुर हो गये। लौटे तो सैकड़ों शरीफ खान्दानों से पैग़ाम आये मगर शादी नही की। वकील-बैरिस्टर ही नहीं, जज भी उन्हे सामने देख पल भर को ठिठक जाते। अंग्रेजों के जमाने में खान्दानी रुतबे का ख्याल तो हो जाता था। हाइकोर्ट और चीफकोर्ट के रजिस्ट्रार का पद प्रायः जुडीशल सर्विस के लोग ही प्रोमोशन से पाते थे। लेकिन गवर्नर ने नफीस अहमद साहब की विद्वत्ता की ख्याति, उनके

खान्दानी रुतबे और चीफकोर्ट के जजों की सिफारिश से उन्हें सीधे चीफकोर्ट के रजिस्ट्रार के पद पर नियुक्त कर दिया था।

हाईकोर्ट या चीफकोर्ट के रजिस्ट्रार का पद बहुत अधिकार और जिम्मेवारी का होता है। चीफकोर्ट के वकील-बैरिस्टर रजिस्ट्रार से आत्मीयता और उसकी नज़रें इनायत के लिए लालायित रहते हैं। उसे ओब्लाइज करने के लिए मौके की तलाश रहती है। लेकिन लोग नफीस साहब की शराफत से ओब्लाइज्ड रहते थे। शासन और अधिकार के ऐसे पद पर होते हुए भी कभी उनके माथे पर न तेवर देखे गये, न जबान से सख्त लफ्ज सुना गया। वकील-बैरिस्टरों, कोर्ट के अफसरान और चपरासियों तक से भाईचारे का सलूक और बोलचाल। काम में कितने ही मसरूफ हों कोई उनके कमरे में पहुँच जाये, जरूर तशरीफ रखने के लिए ही कहेंगे। पूरी बात इतमीनान से सुन कर धीमे-धीमे स्वर में उत्तर देंगे। कोई न कोई वकील-बैरिस्टर उनके कमरे में बने ही रहते। गुफ्तगू चलती रहती। लोगों को विस्मय था कि नफीस साहब काम किस समय निबटाते हैं। काम के बोझ या परेशानी की शिकायत उनसे किसी ने कभी नहीं सुनी।

नसीफ साहब की पसन्द हर बात मे बहुत ऊंची थी। सिगरेट पीते थे विलायती बहुत बढ़िया और कीमती। बड़ा सिगरेट केस पूरा भर कर कोर्ट साथ लाते और सिगरेट केस मेज के दराज में रख देते। दो-चार धाकड़ वकील-बैरिस्टर साहबान दिन भर में एक-दो सिगरेट उनके सिगरेट केस से जरूर ले लेते। कोई काम हो या न हो, आदाब अर्ज करने के लिए ही उनके कमरे में पहुँच जाते। नसीफ साहब भी खूब समझते थे। लेकिन उन्होंने कभी खिन्नता नहीं प्रकट की। खुद सिगरेट केस पेश कर देते—"शौक कीजिये।"

एक थे बैरिस्टर अलीम, बिला नागा नफीस साहब के सिगरेट केस से सिगरेट लेने वाले। अलीम साहब रजिस्ट्रार के कमरे में पहुँच जाते। आदाब कहा और खुद ही मेज का दराज खींच कर सिगरेट केस निकाल सिगरेट सुलगा लिया। सिगरे खत्म होने तक मौसम के बारे में या कोई दूसरी बेमतलब बात की और लौट गये।

एक दिन अलीम साहब रजिस्ट्रार के कमरे में पहुँचे। हस्बमामूल आदाब

अर्ज किया और सिगरेट के लिए मेज का दराज खींच लिया। दराज मे सिगरेट केस न था। वो झेंप कर दराज बन्द कर रहे थे। नसीफ साहब ने उनकी ओर नजर उठाकर खेद प्रकट किया—"गलती के लिए मुआफी चाहता हूँ। यह जेब में ही रह गया। दराज मे रखना भूल गया।" उन्होंने सिगरेट केस वेस्ट से निकाल और खोल कर अलीम के सामने पेश कर दिया।

इतने शरीफ और सलीके के इन्सान नसीब साहब भी एक झंझट में फंस गये। उस समय चीफकोर्ट में एक बहुत एम्बीशस बैरिस्टर था मिस्टर लाल। रहन-सहन मार्डन। सिविल लाइन्स मे बंगला लेकर रहता था। लाल, रजिस्ट्रार से परिचय और आत्मीयता से लाभ उठा सकने की आशा मे उनसे रब्त-जब्त बढाने की कोशिश मे रहता था। नफीस साहब ब्रिज भी अच्छा खेलते थे। लाल ने अपने यहां ब्रिज जमाना शुरू किया और फिर रजिस्ट्रार को चाय और डिनर के लिए अपने यहां निमंत्रण। मिसेज लाल कद-काठ की अच्छी, हसीन और एजुकेटिड। पर्दा नही करती थी। लाल कद मे पत्नी से उन्नीस ही था और शक्ल भी कुछ ऐसी-वैसी। लेकिन पत्नी को प्राइड-पौजेशन की तरह गर्व से सब जगह साथ लिये फिरता था। पत्नी भी पार्टी मे सम्मिलित हो सके इस ख्याल से लाल दूसरे लेडीज को भी बुला लेता।

मिस्टर लाल रजिस्ट्रार से परिचय और रब्त-जब्त बढ़ा रहा था। उससे भी अधिक इंटेरेस्ट नफीस साहब में लेने लगी मिसेज लाल। नफीस साहब जैसा आनरेबल और विशाल हृदय व्यक्ति किसी लेडी के आदर की अवहेलना कैसे कर सकता था। शुरू में अपनी पत्नी के प्रति नफीस साहब विनय से लाल ने संतोष अनुभव किया। उसने रजिस्ट्रार पर अपनी पत्नी के प्रभाव को अपना ही प्रभाव समझा परन्तु पत्नी में दूसरे लच्छन देखे तो सनकने लगा।

लाल ने नफीस साहब को अपने यहां बुलाना, उनके यहां जाना और पत्नी को क्लब या ऐसी जगह, जहां पत्नी की भेंट उनके रकीब से सम्भव थी, ले जाना बन्द कर दिया। मिसेज लाल ने प्रोटेस्ट नहीं किया। ऐसे मामले में औरत बोल भी क्या सकती है। उसने जाहिरा बेपरवाही दिखाई कि पति का सन्देह व्यर्थ है। वह घर के कामकाज, शापिंग और सहेलियों से मेल-मुलाकात में पहले की

अपेक्षा अधिक व्यस्त दिखाई देने लगी। कभी-कभी सहेलियों के यहां से सांझ काफी देर से, नौ-साढ़े नौ भी लौटती। लाल के एतराज करने पर मिसेज लाल ने पति के सन्देह से अपमान समझ कर प्रोटेस्ट किया—"अकारण बेइज्जती करोगे तो मेरे लिए गोमती है।" प्रोटेस्ट में अनशन भी कर दिया। लाल बेचारे को ही क्षमा मांगनी पडी।

चीफकोर्ट मे गरमी के मौसम की दो माह की छुट्टियों का पहला ही दिन था। लाल प्रातः सब काम शैथिल्य से कर रहा था। कुछ मित्रों को ब्रिज और खरबूजों की दावत पर बुला रखा था। आठ बजे मिसेज लाल ने कहा—"हम कैसरबाग से खरबूजे खुद ले आयें। मुए नौकर गली-सड़ी चीज ले आते हैं। मेहमानों के सामने शर्मिन्दगी होती है। घंटे भर मे लौट आयेंगे। तुम तब तक शेव करके नहा लो।" कोर्ट में छुट्टी या रविवार के दिन भी वो कभी-कभी स्वयं कैसरबाग से सब्जी ले आती थीं।

मिसेज लाल साढ़े दस बजे तक नही लौटी तो लाल को चिंता हुई, कैसरबाग का रास्ता पन्द्रह नहीं तो बीस मिनट का। फल खरीदने के लिए आधा घंटा नही चालीस मिनट काफी। लाल मेहमानों के आने मे पहले ही घर से निकल स्थिति जानने के लिए कैसरबाग की ओर चल दिया। राह में चारों तरफ सावधानी से देखता गया। कैसरबाग सब्जी मंडी में किसी सनसनीखेज चर्चा का आभास नही मिला। लाल के मन का सन्देह ऊपर आया। पर कर क्या सकता था। मन मार कर बंगले पर लौट आया। दो मेहमान आ चुके थे, दूसरे भी आ गये। लाल ने मेहमानों के सामने बात बनाग़ी, चौक में मिसेज लाल की मौसेरी बहिन की ससुराल है। सुबह-सुबह वहां से पैगाम आया था। हम लोग वहां ही गये थे। वहां काफी परेशानी है। मिसेज को वहीं ठहर जाना पडा। कुछ सोच कर लाल ने कहा—"हमने तो कहा था लड़की को यहा ले आयें। मुमकिन है उन्हें लड़की के साथ अलीगढ जाना पड़ जाये।"

ऐसी हालत में लाल के यहां ब्रिज क्या जमता और खरबूजों की दावत क्या होती। बारह बज रहे थे। मेहमान उठने को हो रहे थे। लाल व्यवस्था बिगड़ जाने के लिए खेद प्रकट कर रहा था। उस समय तारवाला आ पहुँचा।

लाल तार के फार्म पर हस्ताक्षर कर रहा था। अलीम ने अनुमान प्रकट किया—"तार अलीगढ़ से ही तो नहीं आया।""हम पढ़ दें ?"

लाल को किसी तार की आशा न थी। खयाल हुआ—केस की तारीख के संबंध में किसी मुवक्किल का तार हो सकता है। कह दिया—प्लीज पढ़ दो।"

अलीम ने तार पढ़ा—"मिसेज लाल की प्रतीक्षा मे चिन्ता न करें। वो कुछ दिन भ्रमण के लिए जा रही हैं। मैं उनकी सुविधा का ध्यान रखूंगा—नफीस अहमद।"

पत्नी की गैरहाजरी के लिए लाल ने जो कुछ कहा था, मेहमानों ने उसका कोई जिक्र नहीं किया। लाल का विचार था कि उसने अपनी पत्नी और नफीस अहमद में आकर्षण के प्रसंग को सावधानी से दबा लिया है। पर बात ऐसी नहीं थी। मिसेज लाल की प्रणयआतुरता के कारण वह चर्चा बार के सर्किल में काफ़ी फैल चुकी थी। अलीम कुछ पल तार की ओर मौन देखता रहा और बोला—"रजिस्ट्रार साहब की इस हरकत को सभी लोग कन्डेम करेंगे। लेकिन शरीफ आदमी इखलाक से नहीं गिरता। ठिनरा भी करता है तो उसकी शिवा-लरी और शराफत कायम रहती है। उसे सचाई और दूसरे की परेशानी का ख्याल जरूर है।"

वकील खन्ना ने अलीम की बात काटी—"आपको इस तार में महज शिवालरी और शराफत दिखाई देती है। जनाब, इसमें जबरदस्त कानूनी नुक्ता है। उसने लाल को इत्तला दे दी है कि इनकी वाइफ कुछ दिन की सैर के लिए खुद शहर से जा रही हैं। वह महज लेडी की—इनकी वाइफ की—कम्पनी में है। इनके लिहाज की वजह से उसका खयाल रखेगा। वह लेडी को भगा कर नहीं ले जा रहा है। बहुत गहरा शख्स है। उसने तार की कापी और रसीद सम्भाल कर रखी होगी, समझे। उसके पास फर्स्ट क्लास 'डाज' कार है। इस वक्त तक लखनऊ से डेढ़ सौ मील के फासले पर होगा।"

खन्ना ने तार को गौर से देखा—"एक्सप्रेस तार जी० पी० ओ० में ग्यारह बजे दिया गया है। उसमें क्या है, तार लिखकर चलते वक्त अर्दली को दे गया होगा कि ग्यारह बजे दे देना।"

आप जानते हैं, शरीफ आदमी के लिए सबसे बड़ी चोट उसकी इज्जत पर दाग ही हो सकता है। लाल ने बंगले से निकलना छोड दिया। वेकेशन्स में कही बाहर नही गया। बंगले में तनहा चुप पड़ा रहता। किसी को मुंह दिखाने लायक न था। शक्ल-सूरत और कद-काठ से पहले भी यों ही था; जिस्म और भी सूख गया, चेहरे पर एक अजीब सी वहशत आ गयी। पत्नी के प्रति उसका मन घृणा से भर गया। निश्चय कर लिया---वह कसबी लौटकर कदमों पर सिर रख कर, गोमती में डूबने की धमकी देकर भी क्षमा मागेगी तो भी कुतिया को लतिया कर दुत्कार देगा। लेकिन नफीस ने जो बेइज्जती की है, उसका बदला तो लेना ही होगा। विश्वास था, नफीस अहमद वेकेशन्स के बाद लखनऊ लौटेगा जरूर। वैसे मिजाज, खसलत और पोजीशन का इन्सान छिप-छिप कर परदेश की परेशानी बहुत दिन नहीं झेल सकेगा। दो हजार तनख्वाह के ओहदे को यों ही छोड जायगा! सरकारी सर्विस है, इस्तीफा दिये और इस्तीफा मंजूर हुए बिना ड्यूटी से लापता हो जाना जुर्म है। नफीस ऐसा रिस्क नहीं ले सकता।

वेकेशन्स के खत्म होने से चंद दिन पहले लाल ने कोर्ट से यह भी मालूम कर लिया कि नफीस ने अपने ओहदे से इस्तीफा न दिया था। वेकेशन के आखिरी दिन उसे खबर मिल गयी कि नफीस अहमद अपने बंगले में लौट आये थे। मिसेज लाल लौटी, नही लौटीं, डूबी-मरी, इस बात की उसने फिक्र नहीं की।

चीफ कोर्ट खुलने के दिन लाल साढ़े ग्यारह बजे कोर्ट पहुंचा। वाकिफों के लिए उसे पहचानना मुश्किल था। विकोना का काला कोट कधों पर इतना ढीला हो गया था मानो हैंगर पर लटक रहा हो और स्टिफ कालर गर्दन पर दो उंगली ढीला। लेकिन चल रहा था कधे अकड़ा कर, हाथों की मुट्ठियां बांधे बिना किसी से नज़र मिलाये। सीधे रजिस्ट्रार के कमरे के दरवाज़े तक गया। दरवाज़े पर लटकी चिक को निधड़क दोनों हाथों से उठाया। नफीस अहमद अपनी कुर्सी पर मौजूद थे।

नफीस अहमद साहब ने दरवाज़े की ओर आंख उठाई। इससे पहले कि वे बोल पायें, लाल ने ऊंची आवाज से खंखारा और रजिस्ट्रार की तरफ 'हाकत्थू!'

लाल रजिस्ट्रार की बेइज्जती कर अपने बंगले पर लौट गया।

दूसरे दिन लाल लंच इंटरवल के बाद कोर्ट पहुँचा। पहले दिन की तरह अकड़ता हुआ सीधा रजिस्ट्रार के कमरे तक गया। चिक उठाई और पुरशोर खंखारे से उनकी तरफ थूक कर अकड़ता हुआ लौट गया। लाल ने तीसरे-चौथे दिन भी वही हरकत की। ऐसी विचित्र घटना से चीफ कोर्ट में सनसनी फैल गयी। सब तरफ लाल के पागलपन की उत्तेजना और उसके कारण के सम्बन्ध में चर्चा। लाल कोर्ट के हाते में पहुँचता तो कई लोग ऐसा कल्पनातीत तमाशा देखने के लिए इधर-उधर से झांकने लगते या रजिस्ट्रार के कमरे से कुछ फासले पर आ खड़े होते।

लाल की जाहिलाना हरकत पर लोगों में बहुत नाराजगी फैल गयी। लेकिन नफीस साहब ने अपने अपमान का कोई नोटिस नहीं लिया।

वकील-बैरिस्टर और कोर्ट का अमला नफीस अहमद साहब की बहुत इज्जत करते थे। मिसेज लाल के उनके साथ चले जाने की घटना से भी नफीस अहमद की शखसियत के कारण लोगों में इस घटना के सम्बन्ध में मतभेद था। कुछ लोगों की राय थी कि इस मामले में भी नफीस साहब अपनी शराफत की वजह से मजबूर थे। कोई नोबल और शिवालरस इन्सान किसी लेडी के आत्म-समर्पण और कातरता को सिर्फ रिस्क के खयाल से इग्नोर कर सकता है? वह लेगहार्न मुर्गी की नस्ल जैसी औरत! चिरौंटा जैसे लाल के साथ उसका कैसे बसर होता! जो लोग यौन सम्बन्धों की नैतिकता की दृष्टि से नफीस साहब से सहानुभूति नहीं रखते थे, वे भी उनकी सहनशीलता, शराफत और इखलाक के कायल थे और लाल की जहालत से नाखुश।

अलीम, खन्ना और कुछ दूसरे वकीलों ने लाल से सहानुभूति प्रकट कर उसे समझाने की कोशिश की—कुछ करना है तो ढंग से करो! जाहिलाना हरकत से तो लोगों में तुम्हारे खिलाफ जज्बा पैदा हो रहा है। यह तो उस शख्स की सहनशीलता है वर्ना तुम अब तक कोर्ट प्रेमिसिस में बेजा हरकत के इल्जाम में हवालात में होते।

लाल ने तैश से जवाब दिया—"मुझे किसी की हमदर्दी और मदद की जरूरत नहीं। जिन्हें उस लुच्चे का लिहाज और खौफ है, उसकी खुशामद करें। उसने

मेरी इज्जत पर हाथ डाला है मैं उसकी इज्जत खत्म कर दूंगा। उसके मुंह पर थूक-थूक कर उसे थूक में गर्क कर दूंगा।"

कुछ वकील, बैरिस्टरों और कोर्ट के आफिसर्स ने खुद रजिस्ट्रार से निवेदन किया—कोर्ट प्रेमिसिस मे ऐसी जाहिलाना बदतमीजी को रोकना जरूरी है। हम जनाब की टालरैंस के कायल हैं लेकिन इसमें कोर्ट और कानूनी पेशे का प्रेस्टीज और डेकोरम भी इनवाल्व होता है। कुछ ने इशारा किया—अगर रजिस्ट्रार साहब की नाराजगी का अदेशा न हो तो लाल कोर्ट तक आने लायक ही न रहे।

नफीस अहमद साहब खैरख्वाहों का मशविरा सुनकर कुछ देर गर्दन झुकाये सोचते रहे और बहुत संजीदा अदाज मे बोले—"बंदा अपने खैरख्वाह साहबान की हमदर्दी और फिक्र के लिए तहेदिल से मशकूर है। लेकिन बंदे को मिस्टर लाल के दिलो-दिमाग की हालत और परेशानी का भी एहसास है। जाहिर है, वो अपने बस में नही हैं। वो भी आपकी हमदर्दी के मुस्तहक हैं। उनसे गैर-हमदर्दी का सलूक मुनासिब नहीं होगा""।"

चीफ कोर्ट के वाच एंड वार्ड अफसर ने झिझकते हुए रजिस्ट्रार साहब से लाल की बेजा हरकत के खिलाफ कानूनी कार्रवाई की इजाजत के लिए जिक्र किया।

नफीस साहब ने उसकी बात सुनकर धैर्य का परामर्श दिया—"अगर इस मामले में कार्रवाई न करने से जनाब पर फर्ज अदायगी में कोताही का इल्जाम आता है तो मैं जनाब के राहे अमल मे हायल नहीं हूं। लेकिन जनाब जानते हैं, कोर्ट के आफिसर्स के खिलाफ फर्ज अदायगी में कोताही के लिए कोई कार्रवाई रजिस्ट्रार की मंजूरी के बिना नहीं की जा सकती। जनाब चाहें तो मिस्टर लाल की कोर्ट में बेजा हरकत के खिलाफ कानूनी कार्रवाई की मंजूरी के लिए एक दरखास्त मुझे दे दे और सुबुकदोश हो जाये।"

दत्ता एकटक सुदर्शन की ओर देखता सुन रहा था। बोला—"मानते हैं, ऐसी शराफत को असाधारण ही कहना होगा।"

सुदर्शन ने तर्जनी उठायी—"आप पूरी घटना सुन लीजिये।""लाल की

जैसी दिमागी हालत थी, वह प्रैक्टिस क्या करता। लेकिन चीफ कोर्ट जरूर जाता, महज रजिस्ट्रार के कमरे की चिक उठाकर उनकी तरफ 'हाकत्थू' कर आने के लिये। उसके बाद कुछ देर बार रूम में बैठ कर वकील-बैरिस्टरों के सामने नफीस अहमद को गालियां दे-दे कर उसे थूक में गर्क कर देने की प्रतिज्ञा दोहरा देता।

ब्रजेश ने टोका—"आखिर यह 'हाकत्थू' का सिलसिला कितने दिन चला ?"

"आप सुनिये।"......"लाल चीफ कोर्ट जाकर रजिस्ट्रार के मुंह पर थूक आने की प्रतिज्ञा को डेढ माह तक निबाहता रहा। लोग इस नजारे के आदी हो गये और इसे एक पागल की हरकत समझने लगे। लोगों ने उधर ध्यान देना छोड दिया। फिर लाल एक साथ तीन दिन कोर्ट न पहुँचा।

लाल चौथे दिन भी कोर्ट न आया तो खन्ना और दूसरे दो वकीलों ने रजिस्ट्रार साहब के कमरे में जाकर संतोष प्रकट किया—"आखिर मिस्टर लाल ने अपनी वहशियाना, नाजायज हरकत की हिमाकत को महसूस कर लिया और कोर्ट को बदमजगी से निजात मिली।"

नफीस साहब कुछ देर गर्दन झुकाये सोच कर बोले—"साहबान, मुझे अंदेशा है कि मिस्टर लाल को कोई जिस्मानी या दूसरी सख्त परेशानी न हो, वर्ना वो जरूर तशरीफ लाते। कल बार-बार ख्वाहिश हुई कि उनकी तकलीफ या परेशानी का बायस मालूम करने के लिए उनके दौलतखाने पर जाऊं। लेकिन इस ख्याल से जब्त कर लिया कि वो अपनी तकलीफ में इस नाचीज की मौजूदगी से कोफ्त महसूस कर सकते हैं। आप साहबान से इल्तजा है कि अगर कोई साहब उनकी मिजाजपुर्सी के लिए तशरीफ ले जाये तो जरूर मेरा आदाब अर्ज करें और मेरी दुआ कहे।"

दत्ता और ब्रजेश के मुंह से एक साथ ही निकल गया—"वाह, वाह ! आफ कोर्स ग्रैण्ड !"

सुदर्शन ने हाथ उठाकर जरा और सुनने का संकेत किया।......"उस सांझ खन्ना एक दूसरे वकील मित्र के साथ लाल के बंगले पर पहुँचा। लाल चार दिन पहले टांगे पर चीफ कोर्ट जा रहा था तो माल रोड पर एक मिलिट्री ट्रक के

क्के से टांगे का पहिया निकल गया और एक्सीडेंट में लाल का घुटना उतर गया। लाल का घुटना प्लास्टर में था और वह पलग पर पडा था।"

लाल दुर्घटना का जिक्र ब्योरे से सुनाकर बोला—"....वो ज़लील खुश हो रहा होगा, मैं मर गया। प्लास्टर खुलते ही कोर्ट पहुँचूंगा और जलील को थूक मे गर्क कर दूंगा।

खन्ना ने सही बात कह दी—"दोस्त, तुम उस शख्स को पहचान नही सके। नफीस साहब ने तो अंदेशा जाहिर किया है कि तुम जरूर किसी जिस्मानी तकलीफ या परेशानी से मजबूर हो। नफीस साहब ने तुम्हारे लिए आदाब फर्माया है और तुम्हारे लिए दुआ कही है। वो तुम्हारी मिजाजपुर्सी के लिए खुद तशरीफ लाना चाहते हैं। इस अंदेशे से जब्त किये हैं कि तुम अपनी तकलीफ में उनकी हाजिरी से कोफ्त न महसूस करो।"

खन्ना की बात सुन कर लाल चित्त लेटा कुछ देर छत की तरफ एकटक देखता रहा। आंखें गुलाबी हो गयीं। उसने चादर से चेहरा ढंक लिया। कुछ देर बाद आंखें पोंछ कर बोला—"जनाब, उस शरीफजादे से मेरा आदाब अर्ज कीजियेगा। मैं उसके सामने शर्मिंदा हूं उससे मुआफी चाहता हूं। जो हुआ उस बदकार औरत की वजह से हुआ। मेरी इज्जत पर लगा कलंक नही मिट सकता लेकिन मैं नफीस साहब की शराफत का कायल हो गया। मैं उन्हें मुंह न दिखा सकूंगा लेकिन आप लोग जरूर मेरी तरफ से अफसोस जाहिर कर दीजियेगा।"

लाल निढाल हो कुछ पल चुप लेटा रहा फिर करवट ले उत्तेजना से बोला—"जनाब सुनिये, यह क्या जाहिलाना नजरिया है। मैं उस बेहया औरत की बदकारी के लिए जलालत और शर्मिंदगी क्यों महसूस करूं? मुझे तो शर्मिंदगी और अफसोस है अपनी शराफत खोकर वहशी बन जाने के लिए।....मैंने एक बेहया औरत की हरकत से तो बेइज्जती और शर्मिंदगी महसूस की लेकिन यह खयाल नहीं आया कि मैं खुद क्या कर रहा हूं। शराफत से गिर कर वहशी बन गया हूं।...."

समय

पापा की अवचेतना में रिटायर हो जाने के डेढ़-दो वर्ष पूर्व से ही चिन्ता सिर उठाने लगी थी—रिटायर हो जाने पर अवकाश का बोझ कैसे संभलेगा ? अपनी इस चिन्ता का निराकरण करने के लिये प्रायः ही कहने लगते—लोगबाग रिटायर होकर निरुत्साह क्यो हो जाते हैं ? सोचिये, नौकरी करते समय अवकाश के दिन कितने प्यारे लगते हैं। गिन-गिन कर अवकाश के दिनों की प्रतीक्षा की जाती है। जब दीर्घ श्रम के पुरस्कार में पूर्ण अवकाश का अवसर आ जाये तो निरुत्साह होने का क्या कारण ? इसे तो अपने श्रम का अर्जित फल मान कर, उससे पूरा लाभ उठाना और संतोष पाना चाहिये। अभाव होगा या मुक्ति मिलेगी केवल मजबूरी से, ड्यूटी की मजबूरी से। आराम और अपनी या इच्छा से श्रम करने मे तो कोई बाधा नही डालेगा। अध्ययन का मनचाहा अवसर होगा और पर-आदेश से मुक्ति। इससे बड़ा सतोष दूसरा क्या चाहिये ?

पापा के मन में बुढ़ापे और बुजुर्गी से या कहिये बूढ़े और बुजुर्ग समझे जाने से सदा विरक्ति रही है। रिटायर होने पर मितव्ययता के विचार से गर्मियो मे पहाड़ जाना छोड़ दिया है। सर्विस के समय गर्मियो में महीने-दो महीने हिल स्टेशनों पर रह लेने का बहुत शौक था। प्रति वर्ष नही तो दूसरे वर्ष अवश्य पहाड़ जाते थे। पहाड़ जाते तो चढ़ाइयों पर सुविधा से चल सकने के लिये एक-दो छड़ियां जरूर खरीद लेते और हर बार नयी छड़ियां खरीदते। परन्तु लखनऊ लौटने पर बाजार या सैर के लिये जाते समय छड़ी उनके हाथ में न रहती। कभी स्वास्थ्य का विचार आ जाता या शरीर पर मास अधिक चढ़ने की आशंका होने लगती तो सुबह-शाम तेज चाल से सैर आरंभ कर देते। प्रातः मुंह-अंधेरे सैर के लिये जाते समय अम्मी के सुझाने पर कुत्तों या ढोर-डगरो से सावधानी के लिये छड़ी हाथ में होने पर भी उसे टेक कर न चलते थे छड़ी को पुलिस या

सैनिक अफसर की तरह, बेटन के ढंग से, हाथ मे लिये रहते। छड़ी टेक कर चलना उनके विचार मे बुढ़ापे या बुजुर्गी का चिह्न था।

पापा का कायदा था कि संध्या समय टहलने के लिये अथवा शापिंग के लिये भी जाते तो केवल अम्मी को साथ ले जाते थे। बच्चों को साथ ले जाना उन्हें कम पसन्द था। अन्य बच्चों की तरह हम लोगो को भी अम्मी-पापा के साथ बाजार जाने की उत्सुकता बनी रहती थी। बाजार मे हम बच्चे कोई भी चीज माग लेते तो तनिक ठुनकने से ही मनचाही चीज मिल जाती थी। बाजार मे पापा हम लोगों को डांटते-धमकाते नही थे। उन्हें बाजार मे तमाशा बनना पसन्द नही था। इसलिये अम्मी और पापा बाजार जाने के लिये तैयार होने लगते तो हम लोगो को नौकर या आया के साथ इधर-उधर टहला दिया जाता। बच्चो को बाजार ले चलने की अनिच्छा मे संभवतः पापा की बुजुर्ग न जान पड़ने की भावना भी अवचेतना मे रहती होगी।

पापा ने अवकाश प्राप्त हो जाने पर अवकाश के बोझ से बचने के लिये अच्छी-खासी दिनचर्या बना ली है। अवकाश प्राप्ति से कुछ महीने पूर्व ही उन्होने योजना बना ली थी कि शासन कार्य के छत्तीस वर्षों के अनुभव और चिन्तन के आधार पर एथिक्स आफ़ एडमिनिस्ट्रेशन (शासन का नैतिक पक्ष) पर एक पुस्तक लिखेगे। दोपहर से पूर्व और अपराह्न मे कम से कम दो-दो घंटे इस विषय मे अध्ययन करते रहते है अथवा नोट्स लिखते रहते है। पहले उन्हें काम के दबाव के कारण कम अवसर मिलता था परन्तु अब सप्ताह में एक-दो दिन निकट सम्बन्धियों और अथवा इष्ट मित्रों की खोज-खबर लेने भी चले जाते हैं। अब किसी हद तक वे शापिंग भी करने लगे है। रसद और साग-सब्जी की खरीद उनके बस की नहीं। वह काम पहले अम्मी करती थी और अब भी रिक्शा पर बैठ कर स्वयं ही करती हैं। अलबत्ता हलकी-फुलकी चीजें, टूथब्रश, ब्लेड, सिगार-सिगरेट, मोजे-रूमाल और दवा-दारू की खरीद के लिये पापा संध्या समय स्वयं हजरतगंज पैदल जाते हैं। कारण वास्तव मे है कुछ चलने-फिरने का बहाना।

पापा के स्वभाव और व्यवहार में कुछ और भी परिवर्त्तन आये हैं। पहले उन्हें अपनी पोशाक चुस्त रखने और व्यक्तिगत उपयोग की बढ़िया चीजों क

शौक रहता था। पोशाक के मामले में वे बिलकुल बेपरवाह नहीं हो गये है परन्तु गत तीन वर्षों से जाडे के आरम्भ में अम्मी हर बार उनसे एक नया ऊनी सूट बनवा लेने का अनुरोध कर रही हैं। पापा पुराने कपड़ों को काफी बता कर टाल जाते हैं। यही बात जूतों के मामले में भी है। अम्मी खीझ कर कहती हैं.... अपने लिये इन्हें जाने क्या कजूसी हो गयी है ! बच्चों को पहाड पर या सैर के लिये बाहर भेज देंगे। उनके लिये कपडों की जरूरत भी दिखायी दे जाती है; अपने लिये कुछ नहीं।....लगता है पापा अब अपने शौक और रुचियों को बच्चों द्वारा पूरा होते देख कर संतोष पाते हैं; मानो उन्होंने अपने व्यक्तित्व का न्यास बच्चों में कर लिया है।

पापा के बच्चों को बाजार साथ न ले जाने के रवैये में भी परिवर्तन हो गया है। उनके रवैये में परिवर्तन का एक या प्रकट कारण यह हो सकता है कि अम्मी अब अपने स्वास्थ्य के कारण पैदल चलने से कतराती हैं और हम लोग उगली पकड़ कर साथ चलने वाले बच्चे नहीं रह गये हैं। कभी पापा या अम्मी के साथ चलना होता है तो हमारे कंधे उनके बराबर या कुछ ऊचे ही रहते हैं। पापा को आशंका नहीं है कि बच्चे बाजार में गुब्बारेवाले या आईसक्रीमवाले को देख कर हाथ फैला कर ठुनकने लगेंगे। अब शायद अपने जवान, स्वस्थ, सुडौल बच्चो की संगति में उन्हें कुछ गर्व भी अनुभव होता होगा। इसलिये संध्या समय हजरतगंज या बाजार जाते समय कभी मुझे, कभी मन्टू बहन को, कभी गोगी को और कभी कजिन पुष्पा को ही साथ चलने का संकेत कर देते है। उनके साथ हजरतगंज जाने पर हम लोगों का चाकलेट-टाफी या आईसक्रीम के लिये कहना नहीं पड़ता। पापा हजरतगंज का चक्कर पूरा करके स्वयं ही प्रस्ताव कर देते हैं—"कहो, क्या पसंद करोगे ? काफी या आईसक्रीम ?"

हमारे समवयस्क साथी हम लोगो को बाजार, पार्क या रेस्त्रां में पापा के साथ देख कर कभी-कभी आंख दबा कर या किसी संकेत से हमारी स्थिति के प्रति विद्रूप या करुणा प्रकट कर देते हैं। निस्सन्देह पापा की उपस्थिति में सभी प्रकार की हरकतें या बातें नहीं की जा सकतीं परन्तु उनकी संगति बोर या दबा देने वाली भी नहीं होती। वे अन्य अवकाश प्राप्त लोगो की सामान्य प्रवृत्ति

के अनुसार केवल अपनी नौकरी के अनुभवों-ऐडवेन्चर्स, नवयुवक लड़के-लड़कियो के लिये उपयुक्त विवाह सम्बन्धों अथवा पुराने जमाने की सस्ती और आज की महगाई की ही चर्चा नही करते। उनके मानसिक सम्पर्क और चिन्तायें वैयक्तिक और पारिवारिक क्षेत्र मे सिमिट जाने के बजाय पढने और सोचने का अधिक अवसर पाकर कुछ फैल ही गये हैं। उनकी बातचीत मे चुस्ती और हाजिर-जवाबी कम नही हुई बल्कि अपने को तटस्थ और अनासक्त समझ लेने से उसका तीखापन कुछ बढ़ गया है। परन्तु हम लोग उनकी संगति के लिये बचपन के दिनों की तरह लालायित नही रह सकते। कारण यह कि अठारह-बीस पार कर लेने पर हम लोग भी अपना व्यक्तित्व अनुभव करने लगे हैं। हम लोगों की अपनी वैयक्तिक रुझानें, अपने काम और अपने क्षेत्र भी हो गये हैं और उनके आकर्षण और आवश्यकतायें भी रहती हैं। कभी-कभी पापा की आवश्यकता और हमारी संगति के लिये उनकी इच्छा और हमारी अपनी आवश्यकताओं और आकर्षणो मे द्वन्द्व की स्थिति आ जाना अस्वाभाविक नही है।

संध्या समय हम लोगो मे से किसी न किसी को साथ ले जाने की इच्छा मे पापा के दो प्रयोजन हो सकते हैं। एक प्रयोजन तो वे स्वीकार करते हैं। उन्हे बूढ़ो या बुजुर्गों की अपेक्षा नवयुवकों की संगति अधिक पसंद है। दूसरा कारण पापा प्रकट नही करना चाहते। लगभग एक वर्ष से उनकी नजर पर आयु का प्रभाव अनुभव हो रहा है। अधिक देर तक पढ़ने-लिखने से धुंधलापन अनुभव होने लगता है। विशेषकर सूर्यास्त के पश्चात् यदि सड़क पर प्रकाश कम हो तो ठोकर खा जाते हैं और प्रकाश अधिक होने पर चकाचौंध से परेशानी अनुभव करते हैं। इसलिये संध्या समय बाहर जाते हैं तो हम लोगों मे से किसी को साथ ले जाना चाहते हैं।

पिछले जाडो की बात है। उस दिन डाक में आयी पत्रिका में एक बहुत रोचक लेख पढ रहा था। पापा के कमरे से अम्मी को सम्बोधन करती आवाज सुनायी दी—"एक जग गरम पानी भिजवा देना।" यह संकेत था कि दिन ढल गया है, पापा बाहर जाने की तैयारी आरंभ कर रहे है। तब ध्यान आया सूर्यास्त का समय हो जाने से कमरे में प्रकाश कम हो गया था। बिजली का बटन दब

कर प्रकाश कर लेना चाहिये था परन्तु वह यात्रा-वर्णन समाप्त किये बिना पत्रिका हाथ से छूट न रही थी।

पापा की बाहर जाने की तैयारी अनेक घोषणाओं के और पुकारों के साथ होती है ताकि सब जाने जायें वे बाहर जा रहे हैं और कोई उनके साथ हो ले। मैंने सुना तो परन्तु मन जापान के उस यात्रा-वर्णन में गहरा रमा हुआ था। पढ़ते-पढ़ते भी पापा की बाहर जाने की तैयारी की आहटें कान मे पड़ रही थी।

आहट से अनुमान हो रहा था कि पापा बाहर जाने के लिये जूते पहन चुके होंगे, टाई बांध ली होगी। उनके कमरे से पुकार आयी—"कोई है हजरतगंज की सवारी।"

पापा की पुकार के स्वर से अनुमान हुआ कि उन्होंने ऊपर के कमरों की ओर मुंह करके पुकारा था। मेरे कमरे से अपनी तैयारी की कोई प्रतिक्रिया न सुन कर उन्होंने लड़कियों को पुकार लिया था। ऊपर से भी कोई उत्तर न आने पर पापा ने फिर पुकारा—"है कोई चलने वाला!"

पापा की इस पुकार की प्रक्रिया मे ऊपर पुष्पा दीदी के कमरे से सुनायी दिया—"मन्दू, जाओ न पापा के साथ घूम आओ।"

मन्दू ने अपने कमरे से पुष्पा दीदी को उत्तर दिया—"तुम भी क्या दीदी ....बोर....बुड्ढों के साथ कौन बोर हो।"

मन्दू ने अपने विचार में स्वर दबा कर उत्तर दिया परन्तु उसकी बात पापा के समीप के कमरे मे भी मैं सुन सका था। पत्रिका आंखो के सामने से हट गयी। नजर पापा के कमरे मे चली गयी। पापा ने जरूर सुन लिया था। जान पड़ा वे कोट हैंगर से उतार कर पहिनने जा रहे थे। कोट उनके हाथ में रह गया। चेहरे पर एक विचित्र, विषण्ण सी मुस्कान आ गयी। कोट उसी प्रकार हाथ में लिये कुर्सी पर बैठ गये। नजर फर्श की ओर परन्तु चेहरे पर विषण्ण मुस्कान। कई क्षण बिलकुल निश्चय बैठे रहे मानो किसी दूर की स्मृति में खो गये हों।

मैंने दृष्टि पापा की ओर से हटा ली कि नजर मिल जाने से संकोच अथवा असुविधा न अनुभव करे। फिर पत्रिका उठा ली परन्तु पढ न पाया। अनुमान

कर रहा था—पापा क्या सोच रहे होंगे ? सहसा स्मृति में बचपन की याद कौंध गयी""""जब हम लोग उनके साथ बाहर जाने के लिये कितने लालायित रहते थे। हमारी उस लालसा से उन्हें कभी-कभी परेशानी भी अनुभव हो जाती थी। एक दिन की स्मृति आंखों के सामने प्रत्यक्ष दिखायी देने लगी—

हम लोग अम्मी और पापा के साथ बाहर जाने की जिद करते तो पापा को अच्छा नहीं लगता था। अम्मी ऐसी अप्रिय स्थिति से बचने का यह उपाय करती थीं कि स्वयं बाहर जाने के लिये साड़ी बदलने से पहले हमें आया हुबिया या नौकर बहादुर के साथ कुछ समय के लिये बाहर भेज देती थी। हम लोगों के लौटने से पहले ही अम्मी और पापा बाहर जा चुके होते।

एक दिन संध्या अम्मी ने हम दोनों को बुला कर कहा—"बच्चो, हुबिया साग-सब्जी लेने चौराहे तक जा रही है। तुम लोग भी घूम आओ।" उन्होंने हुबिया से भी कह दिया, "देखो, कुंजड़े के यहां ताजे नरम सिंघाड़े हों तो इन दोनों को ले देना।"

हम लोग हुबिया के साथ घर से बीस-पच्चीस कदम गये थे। मन्दू ने मुझे रोक कर कहा—"सुनो, अम्मी पापा के साथ बाजार जा रही हैं। हम भी उनके साथ बाजार जायेंगे।" मन्दू ने हुबिया को सम्बोधन किया, "हुबिया, हमारी सैन्डल में कील लग रहा है। हम दूसरी सैन्डल पहन कर आते हैं।" हम दोनों घर की ओर भाग आये।

मन्दू का अनुमान ठीक था। हम लौटे तो ड्योढ़ी मे पहुंचते ही अम्मी की पुकार सुनायी दी—"जी आइये, मैं चल रही हूं।" अम्मी बाहर जाने के लिये साड़ी बदले और जूड़े मे पिनें खोंसती हुई आ रही थी।

मन्दू अम्मी के कमर से लिपट गयी और डबडबायी आखें अम्मी के मुंह की ओर उठा कर आंसू भरे स्वर में हिचक-हिचक कर गिड़गिड़ाने लगी—"कभी""कभी" कभी""बच्चों को भी""तो""साथ""ले जाना चाहिये।"

तब तक पापा भी आ गये थे। उन्होंने पूछा—"क्या है, क्या है ?" वे समझ गये थे, बोले, "अच्छा बच्चो, एकदम तैयार हो जाओ।"

अम्मी ने कहा—"आ मन्दू, तेरी फ्राक बदल दूं।"

परन्तु मन्टू अपनी इस हरकत से इतना शरमा गयी थी कि दोनो हाथो मे मुह छिपा कर भाग गयी। पापा और अम्मी के कई बार बुलाने पर भी नही आयी।

बात पापा के मन मे लग गयी। उस समय बाहर नही जा सके। उसके बाद से हफ्ते-पखवाडे मे हम लोगो को भी बाजार ले जाने लगे थे। कभी-कभी खाने की मेज पर हम लोगों के साथ बैठने पर उस दिन की घटना—मन्टू के रो-रो कर बच्चो को भी कभी-कभी साथ ले जाने की दुहाई देने की बात—सुनाने लगते और इस प्रसंग से मन्टू झेप जाती।

आज पापा के साथ चलने के अनुरोध का उत्तर मन्टू दे रही है—'बोर'''' बुड्ढो के साथ बोर''''।'

पापा अपनी कुर्सी पर निश्चल बैठे, स्मृति मे खोये विषण्ण मुस्कान से वही घटना तो नही याद कर रहे थे!

पापा सहसा, मानो दृढ़ निश्चय से, कुर्सी से उठ खडे हुए। कोट पहन लिया और अम्मी को सम्बोधन कर पुकारा—"सुनो, कई बार पहाड से छड़ियां लाये हैं, कोई एक तो दो!"

एक छडी उठा कर मैंने अपने कमरे मे रख ली थी। पापा को उत्तर दिया—"एक तो यहां पड़ी है, चाहिये?" छड़ी कोने से उठा कर पापा के सामने कर दी।

"हा, यह तो बहुत अच्छी है।" पापा ने छड़ी की मूठ पर हाथ फेर कर कहा और छड़ी टेकते हुए किसी की ओर देखे बिना घूमने के लिये चले गये, मानों हाथ की छड़ी को टेक कर उन्होंने समय को स्वीकार कर लिया। •

दीनता का प्रायश्चित्त

सदानन्द पठानकोट पैसेन्जर छूटने से कुछ समय पहले ही प्लेटफार्म पर पहुँच गया था। तीसरे दर्जे के डिब्बे में जहां कम भीड़ थी, सुविधा से बैठने लायक जगह देख ली थी। परन्तु अपना चुस्त बैग हाथ में लिये गाड़ी छूटने से एक मिनट पहले तक इण्टर क्लास के डिब्बे के सामने टहलता रहा। मानों सामान जगह पर रखकर साथी की प्रतीक्षा कर रहा हो। नजर उसकी लगा-तार प्लेटफार्म की बड़ी घड़ी पर थी। इंजन ने चलने के संकेत की सीटी दी तो वह लपककर तीसरे दर्जे में देखी हुई जगह पर जा बैठा। अपना चुस्त बैग बगल में सीट पर ही रखकर ऐसे बैठा कि अनअभ्यस्त स्थिति में हो, देर से स्टेशन पहुँचने या ऊंचे दर्जे मे स्थान न मिल सकने के कारण वहां बैठना पड़ गया हो।

सदानन्द के शरीर पर उजली सफेद कमीज, कमीज के जेब मे फाउन्टेनपेन, खाकी पैन्ट की पैनी क्रीज और पालिश से चमचमाते काले जूते तीसरे दर्जे मे कुछ बेमेल लग रहे थे। शेष यात्रियों का ध्यान ऐसे भद्रवेश, भद्रलोक की ओर कैसे न जाता। सदानन्द अपने सहयात्रियों के कौतूहल के प्रति उपेक्षा प्रकट करने के लिये नजर खिड़की से बाहर किये पीछे छूटते जाते नगर के मकानों को देख रहा था। वह सहयात्रियों के कौतूहल में अपने अस्तित्व का प्रभाव अनुभव कर रहा था—निश्चय ही यह लोग मुझे सम्भ्रान्त परिवार का व्यक्ति समझ रहे हैं। प्रकट में उसके इस संक्षिप्त से व्यवहार के पीछे कितना चिन्तन, महत्वाकांक्षा तथा प्रयत्नों की पृष्ठभूमि थी।

सदानन्द बी० ए० की परीक्षा के पश्चात् कुछ दिन पहाड़ की सैर के लिये जा रहा था। भविष्य मे प्रयत्नों का आरम्भ परीक्षा-फल पर निर्भर था। सदानन्द की परीक्षा की तैयारी के लिये किये अपने श्रम और परीक्षा मे पर्चे

संतोषजनक कर सकने के कारण आश्वासन था। परन्तु अगले कदम के लिये परीक्षा-फल की प्रतीक्षा अनिवार्य थी। वह प्रतीक्षा के इस समय में दीर्घकाल तक सहे दमन से मुक्ति का उच्छ्वास अनुभव कर लेना चाहता था। इस अवसर की कल्पना वह बहुत समय से कर रहा था। उसने इस अवसर के लिये अपनी स्थिति के विचार से काफी व्यय सह कर पोशाक तैयार करायी थी। टायलेट का भद्रजनोचित सामान और चुस्त बैग खरीदा था।

कालेज में सदानन्द के कुछ सहपाठी अच्छी आर्थिक स्थिति के परिवारों के थे। ऐसे युवक छुट्टियों में पहाड जाने के प्रोग्राम और छुट्टियों के बाद लौटने पर पहाड़ में रह आने के अनुभव गर्व से सुनाते थे। सदानन्द उनके गर्व और उल्लास के प्रति अधिक जानकार की भांति उदारता से मुस्करा देता था—तुम लोगो को पहाड, ठडक, जंगल और बर्फानी चोटियों के दृश्यों से विस्मय और कौतूहल होता है। हम पहाड़ियों के लिये यह सब अभ्यस्त, साधारण वस्तुएं हैं।

सदानन्द की पहाड़ो के सम्बन्ध में जानकारी का आधार उसका केवल जन्म से पहाड़ी होना ही था। छः-सात वर्ष की आयु में माता के देहान्त के पश्चात् सदानन्द को पहाड़ों की सैर क्या, अपनी जन्मभूमि देखने का भी अवसर न मिला था। अब बीस वर्ष की आयु में पहाड़ों के सम्बन्ध में उसका ज्ञान देखे हुए की स्मृति की अपेक्षा पढ़ी-सुनी बातों से ही अधिक था। शैशव की जो स्मृति शेष थी, वह दीर्घकाल के व्यवधान से धूमिल और कल्पना से अतिरंजित होकर पहाड़ों के पुनः साक्षात्कार के लिये उत्सुकता बन गयी थी। अपने आप को पहाडी बता सकना सदानन्द के लिये अपनी कुण्ठता के गोपन में भी सहायक हो जाता था। उसे लाहौर के कडे जाडे मे रक्षा के लिये अपने पिता पर कृपादृष्टि रखने वालों द्वारा खारिज किये हुए पुराने गर्म कोट से ही निर्वाह करना पड़ता था। अपर्याप्त वस्त्र मे जाड़ा उसके शरीर को बेंध सकता था; उनसे अधिक बेंधती थी उसके मन को दूसरो का उतारा हुआ कपडा पहनने के अपमान की पीड़ा। वह आत्मसम्मान बनाये रखने के संघर्ष में दांत किटकिटाते जाड़े और अपने कपड़े के पुरानेपन की उपेक्षा मे मुस्करा देता—हम पहाड़ी लोगों के लिये जाड़ा क्या! वह जाड़े के अभ्यास के दम्भ में कोट के बटन भी खुले रहने देता।

सदानन्द के उस समय तक के जीवन इतिहास का सूत्र, जिससे वह सह-पाठियों को अपरिचित रखना चाहता था, उसके पहाड़ी होने में समाहित था। उसके दादा अथवा परिवार की आर्थिक स्थिति कांगड़ा जिला के पहाड़ी देहात के खत्रियों की अवस्था के विचार से बहुत न थी। परन्तु उसके पिता साधारण की अपेक्षा कुछ अधिक सरल-सीधे या सिद्धड़ निकले। सदानन्द के दादा के दिन पूरे हो जाने के पश्चात् सौतेली मां और भाइयों ने सदानन्द के माता-पिता का परिवार मे रह सकना असम्भव कर दिया। सदानन्द की माता के गांव के लोगो और सम्बन्धियों में से कुछ जिले के केन्द्र और अन्य नगरों में वकील, अध्यापक, डाक्टर और सरकारी अफसर थे। उन लोगों को गाव के सम्बन्ध से और रिश्ते के दामाद की सहायता के लिये हाथ बढ़ाने पडे। शुभचिन्तकों के प्रभाव और सिफारिश से सदानन्द के पिता को लाहौर मे एक आर्यसमाज मदिर मे रक्षक-चौकीदार या चपरासी की नौकरी मिल गयी। सदानन्द के पिता मदिर की इमारत और फर्नीचर की देखभाल के साथ संस्था के लिये मासिक अथवा वार्षिक चन्दा उगाहने का काम भी करते थे। सदानन्द होश संभालने, प्राइमरी पास करने के बाद से ही चौकीदार-चपरासी का बेटा होने की ग्लानि अनुभव करता था। मिडिल पास करके वह अपने पिता का परिचय कुछ झेप से आर्यसमाज मदिर के क्लर्क के रूप मे देने लगा था। उसके इस बयान के लिये तथ्य का इतना आधार अवश्य था कि उसके पिता जिन लोगों से संस्था के लिये चन्दा उगाहते थे, उनके नाम और प्राप्त चन्दे की रकम मैनेजर को हिसाब देने के लिये एक छोटी बही मे टांकरी (लंडे) लिपि में दर्ज करते रहते थे।

सदानन्द के पिता की ईमानदारी और कार्य-तत्परता के कारण संस्था से सम्पर्क रखने वाले आर्य सज्जनो की उन पर कृपा रहती थी। सदानन्द आर्य-समाज स्कूल में मैट्रिक तक निःशुल्क पढ सका। वह किशोर अवस्था में ही अपनी परिस्थिति के प्रति सतर्क हो गया था। कुशाग्र बुद्धि और परिश्रमी था। मैट्रिक की परीक्षा मे उसने फर्स्ट डिवीजन पाया। कालेज मे पढ़ते समय अपनी आवश्य-कताओं के लिये वह छोटी-मोटी ट्यूशनें कर लेता था। सावधान रहता था कि उसकी पोशाक उसके दैन्य का सकेत न कर सके। इण्टर की परीक्षा मे भी

डिस्टिंक्शन और फर्स्ट डिवीजन प्राप्त किया। सदानन्द के पिता के प्रति सहृदय सज्जन उसी समय सदानन्द को साठ-सत्तर रुपये मासिक की जीविका पा सकने में सहायता देने के लिये तैयार थे। अपने भविष्य के सम्बन्ध में सदानन्द की कल्पना दूसरी ही थी। उसके मन में मलाल था यदि उसे ट्यूशनें पढाने की मजबूरी न होती तो अवश्य छात्रवृत्ति पाता।

सदानन्द कालेज में योग्य विद्यार्थी का सम्मान पाता था। परन्तु निम्नस्तर के व्यक्ति के पुत्र होने और दयनीय आर्थिक स्थिति की भावना उसे कभी उन्मुक्त उच्छ्वास अनुभव न करने देती। उसका भी मन होता कि अन्य विद्यार्थियों की तरह कमीज-पतलून पहने। ट्यूशन से कमाये रुपये पास होने पर भी उसे मन मार लेना पड़ता—पिता के परिचित मुझे ऐसी पोशाक में देखगे तो""उसने अपनी ऐसी सब कामनाएं बी० ए० की परीक्षा देने तक के लिये स्थगित रखी थीं।

सदानन्द ने लाहौर से पहाड़ की सैर के लिये चलते समय पिता के बहुत समझाने पर भी एक कम्बल तक साथ न लिया था। सम्मानित भद्र लोक की स्थिति के अनुकूल सफर में ले जाने लायक बिस्तर था नही। पहाड़ के पैदल सफर में बिस्तर को कन्धे पर कैसे उठाये फिरता या बिस्तर उठाने के लिये मजदूरी कहा से देता। बिस्तर के अभाव की असुविधा की अपेक्षा जैसा-तैसा बिस्तर कन्धे पर लिये फिरने का अपमान उसे अधिक असह्य था। उसका विचार केवल ऐसे ही सम्बन्धियों के यहां जाने का था, जहां आदर और स्नेह के कारण उसके लिये स्थान और बिस्तर की कठिनाई न हो।

सदानन्द ने रात गाडी मे बैठे-बैठे या अधलेटे ऊंघते हुए गुजार दी। सतर्क रहा कि कमीज और पतलून की क्रीज़ सफर में मसली जाकर पोशाक खराब न हो जाये। गाडी पठानकोट मुंह-अंधेरे ही पहुँच गयी। उसने स्टेशन पर साबुन से हाथ-मुंह धोया, बालों में कंघी की और बस से यात्रा के लिये तैयार हो गया।

सदानन्द का विचार सबसे पहले धर्मशाला जाने का था। उसने धर्मशाला की घनी हरियाली, सिहरा देने वाली सर्दी और वहां सिरहाने खड़े सदा हिमाच्छादित उत्तुंग पर्वतश्रेणियों के विषय में बहुत कुछ सुना था। धर्मशाला मे ही

उसके माता की ओर के सम्बन्धियों में सबसे अधिक समर्थ, सम्मानित और प्रभावशाली प्रधान जी भी रहते थे। प्रधान जी की गिनती जिले के चोटी के वकीलों मे थी। वे स्थानीय आर्यसमाज के प्रधान, जिला बार एसोसियेशन के के प्रधान, रेडक्रास के प्रधान; कितनी ही संस्थाओं के प्रधान थे। लोग-बाग उनकी चर्चा नाम से नही 'प्रधान जी' कहकर करते थे। उनकी सिफारिश से ही सदानन्द के पिता ने लाहौर में नौकरी पायी थी। प्रधान जी की पत्नी सदानन्द की माता की ममेरी बहन थीं। सदानन्द की माँ बचपन में अपने मामा के यहाँ रही थी और प्रधान जी की पत्नी उसकी दाँतकाटी रोटी की सहेली थीं। प्रधान जी लाहौर जाते तो अपने स्थिति के मित्रों अथवा सम्बन्धियों के मेहमान होते। सदानन्द के पिता समाचार पाकर प्रधान जी की सेवा में आभार प्रकट करने और नमस्ते कहने के लिये अवश्य पहुँचते। उन्होंने बेटे को भी हिदायत कर दी थी—धर्मशाला जरूर जाये और प्रधान जी और अपनी मौसी को 'पैरी-पैना' करना न भूले। सदानन्द ने सबसे पहले यत्न से सम्भाले कपड़े मैले हो जाने से पूर्व धर्मशाला जाना ही उचित समझा।

सदानन्द चार घंटे के बस के सफर मे लगातार सोचता रहा—इतने बड़े लोगों के यहाँ जाकर ठहरने की स्पर्धा उचित होगी? उसके पिता की स्थिति की तुलना प्रधान जी के नौकरों (मुंशी आदि) से ही हो सकती थी। इतने बडे आदमी के यहाँ, चाहे वह दूर का सम्बन्धी ही हो, अतिथि बनने की महत्त्वाकांक्षा तिरस्कार को निमन्त्रण देना न होगी? उसने निश्चय कर लिया दो-तीन घंटे मे धर्मशाला में घूम लेगा। प्रधान जी के यहाँ जाकर उन्हें और मौसी को पैरी-पैना कहकर बी० ए० की परीक्षा देने की सूचना दे देगा। दोपहर बाद धर्मशाला से बस में नगरोटा मामा के यहाँ चला जायगा।

सदानन्द लोअर धर्मशाला में डिपो के पास बस के अड्डे पर ग्यारह बजे पहुँच गया। लोअर धर्मशाला से कोतवाली बाजार की चढाई चढ़ने और पूछताछ कर प्रधान जी के मकान का पता लगाने में साढ़े बारह हो गये। उसे आशा थी कि रविवार होने के कारण प्रधान जी कचहरी न जायेंगे, मकान पर ही मिल सकेंगे। प्रधान जी बैठक में नहीं थे। दो भद्रवेश मुवक्किल उनकी प्रतीक्षा में बैठे

थे। नौकर से मालूम हुआ प्रधान जी आराम कर रहे थे। घंटे-डेढ़ घंटे तक उनके बैठक में आने की आशा थी। सदानन्द को अपना परिचय भीतर भिजवाने का साहस न हुआ। वह घंटे-डेढ़ घंटे बाद फिर आने के विचार से धर्मशाला की सैर के लिये चला गया। भूख उसे परेशान कर रही थी और छाया में होने पर धर्मशाला की ठंडी वायु से शरीर मे फुरफुरी आ जाती।

सदानन्द ने भूख को बहलाने के लिये एक छोटी-सी दुकान से पकौड़ी खाकर चाय का एक प्याला पी लिया। पहाड़ी नगर की चढाइयों-उतराइयों पर लगातार बेग उठाये घूमने से उसकी भूख बेकाबू हो रही थी परन्तु मितव्यय के विचार से भूख की उपेक्षा कर रहा था। वह दो बजे के बाद पुनः प्रधान जी के यहां पहुँचा। प्रधान जी बैठक मे मुवक्किलों से बातचीत में व्यस्त थे। सदानन्द ने प्रधान जी को चरण स्पर्श से प्रणाम कर अपना नाम बताया।

"आओ बरखुर्दार।" प्रधान जी ने आशीर्वाद देकर उसकी ओर देखा। उस की भद्रजनोचित पोशाक के कारण समीप कुर्सी पर बैठाकर पूछा, "बरखुर्दार कब आये? घर मे सब लोग ठीक-ठाक हैं? सीधे घर से आ रहे हो? घर में क्या हालचाल है? कारोबार ठीक चल रहा है? फसल-वसल कैसी रही तुम्हारी तरफ? आज कैसे आना हुआ?"

प्रधान जी फिर मुवक्किलों से बातचीत करने लगे। सदानन्द अपने उत्तरों के बावजूद प्रधान जी की भावशून्य मुद्रा से भांप गया कि प्रधान जी उसे पहचान नही पाये थे। उसके जैसे क्षुद्र व्यक्ति के लिये इतने बड़े आदमी की स्मृति मे क्या स्थान? उसका आत्मसम्मान भड़क उठा—व्यर्थ यहां आया, तुरन्त लौट जाये। मन ही मन दांत पीसकर एक बार फिर प्रधान जी के चरणो की ओर झुकने का संकेत करके उठ खड़ा हुआ—"मौसा जी, आज्ञा दीजिये, मुझे बस पकड़नी है। पिता जी ने मौसी जी को नमस्ते कहा है।"

प्रधान जी ने उसकी ओर नजर उठायी—"क्या जल्दी है बरखुर्दार, कहां की बस?"

"मामा के यहां नगरोटा जा रहा हूं।" सदानन्द ने उत्तर दिया।

सदानन्द के घर-बार का परिचय सुनकर प्रधान जी के चेहरे पर पहचान

लेने का भाव न आया परन्तु उन्होंने अपना हाथ बढ़ाकर सदानन्द को अपनी ओर खींच लिया—"वाह-वाह बरखुर्दार ! मौसी से मिले बिना चले जाओगे।" उन्होंने भीतर के दरवाजे की ओर मुँह कर पुकार लिया "दसू"।

सदानन्द को नौकर के साथ भीतर जाना पड़ा। प्रधान जी की प्रौढ़ा पत्नी सदानन्द को क्या पहचानती। पूछ लिया—"काका कहां से आये ?"

परिचय का सूत्र देने के लिये सदानन्द को अपनी माँ का नाम बताना पड़ा—"मैं लाजो का लड़का हूँ।"

मौसी जी ने सदानन्द को तुरन्त आलिंगन में ले लिया। किलक उठी—"हाय बिल्कुल लाजो का मुहद्रा है।" बांह उठाकर सदानन्द के सिर पर हाथ फेरा। भीतर ले जाकर पलंग पर बैठाया। उसके पिता और दूसरे सम्बन्धियों के विषय में पूछ कर बोली, "हाय तूने अभी भात कहां खाया ! रसोई मे चल परोस दूं।"

सदानन्द मौसी के छलकते स्नेह और उद्गार से गद्गद हो गया परन्तु दोपहर बाद तक भी बाजार या होटल में भोजन न कर सकने की कृपणता छिपाने के लिये बोला —"मौसी जी मैं खा चुका।" आदर से पायी तृप्ति ने उसकी भूख को दबा दिया। मौसी ने स्नेह उपालम्भ दिया—"कहां खाया""बाजार मे ?"

सदानन्द ने स्वीकार कर लिया, बस से उतरकर होटल में खा लिया। मौसी उपालम्भ से बोली—"हाय बाजार में क्यों खाया !"तेरा घर नही था यहां ?"

सदानन्द गद्गद हो गया। बोला—"मौसी जी, सोचा था घर ढूंढ़ने में समय लगेगा। अच्छा अब चलूं, नगरोटा जाना है।"

मौसी ने स्नेह से डांट दिया—"पागल, क्या उल्टी बातें करता है। आज नही जाने दूंगी। कल चले जाना। अपने भाई-बहनो से नही मिलेगा, वह लोग मकलोडगंज गये हैं। सांझ तक लौटेंगे। आज नहीं जाना। ठहर, तेरे लिये कुछ लाती हूँ।"

मौसी सदानन्द को बैठाकर आंगन से दूसरी कोठरियों की ओर चली गयीं। सदानन्द स्नेह-आदर का पुलक और संतोष अनुभव कर रहा था। मौसी जल्दी

ही लौट आयीं। एक तश्तरी में मठरियां, शकरपारे, किशमिश और अखरोट की गिरी लिये बोलीं—"ले कुछ तो खा!" मौसी के पीछे-पीछे आया दत्तू। एक खूब बडा दूध से भरा गिलास लिये था। दत्तू ने गिलास सदानन्द के सामने छोटी तिपाई पर रख दिया।

सदानन्द स्नेह के उद्गार से उत्साहित होकर बोला—"मौसी जी इतना कैसे खा सकूंगा? दूध मुझे नहीं अच्छा लगता।"

"अच्छा-अच्छा कुछ तो खा। दूध नही अच्छा लगता। आजकल के लडके-लडकियों को जाने क्या हो गया है। अच्छा मैं चाय भिजवाती हूँ।" मौसी चौंकी, "अरे बदन पर कोई गर्म कपड़ा नहीं। बेटा, लाहौर नही है। सर्दी खा जाओगे। जान पड़ता है, साथ लाया नही। अच्छा तेरे भाई का स्वेटर भेजती हूं।" मौसी फिर आंगन मे दूसरी तरफ चली गयी।

सदानन्द के मन मे समृद्ध सम्बन्धियों के यहां आने की ग्लानि दूर हो गयी। तुरन्त नगरोटा के लिये चल देने का विचार भी नहीं रहा। उसका हाथ स्वतः तश्तरी की ओर बढ़ गया। कमरे की खिडकी से पहाड की उठती ऊंचाई पर देवदारु के जंगलों के ऊपर धूप में चांदी सी चमचमाती बर्फ की ओर नजर लगाये शकरपारे, किशमिश और अखरोट की गरी ठूंगने लगा। उसने आंगन से मौसी की आवाज सुनी—"अभी आती हूँ।" और दत्तू पहले की तरह एक खूब बडा चाय से भरा गिलास कपड़े से थामे ले आया। एक स्वेटर उसने सदानन्द के समीप रख दिया। "मां जी ने कहा है—पहन लो।"

सदानन्द अपने विचारो मे डूबा, खिडकी से बाहर नजर लगाये शकरपारे और किशमिश ठूंगता रहा। ठंडी हवा से सिहरन अनुभव होने पर उसका ध्यान स्वेटर की ओर गया। विचारों की तन्द्रा टूटी तो वह चौंका"""""अपने ध्यान में डूबा-डूबा वह क्या कर बैठा था। तश्तरी बिल्कुल खाली हो गयी थी। शकरपारे, किशमिश और अखरोट की गिरी सब खा गया। बेखबरी मे दूध और चाय के दोनो गिलास पी लिये।

सदानन्द लाज से धरती में गड़ा जा रहा था।""भुक्खड़ों की हरकत! मौसी जी आकर देखेंगी तो क्या कहेंगी। मैंने तो कहा था—भूख नही। मौसी

को क्या मुंह दिखायेगा। उसने अपना बैग उठाया। बैठक से बचकर मकान के बाहर सड़क पर गया। ढालू सडक पर तेजी से मोटर अड्डे की ओर चल पडा।

सदानन्द मोटर के अड्डे की ओर लगभग आधा रास्ता उतर गया तो ख्याल आया—जरूर चार बज चुके होंगे। नगरोटा के लिये बस नहीं मिलेगी। धर्मशाला में पहुँचते ही उसने अड्डे पर पता ले लिया था—नगरोटा के लिये बस तीन बजे छूटती थी। दीर्घ निःश्वास लेकर सोचा धर्मशाला की कडी सर्दी में रात कहां बिता सकेगा। धूप ढल जाने के कारण सर्दी की सिहरन बार-बार अनुभव हो रही थी। अपनी मूर्खता के क्षोभ में सोचा, यदि पठानकोट के लिये ही वापस बस मिल जाये तो इस सर्दी मे मरने की अपेक्षा लौट जाये। भर पाया ऐसी सैर से! होटल मे ठहर सकने की कल्पना भी सम्भव न थी। एक रात का होटल का दाम चुकाने के बाद लाहौर लौट सकने के लिये बस और रेल का किराया उसकी जेब में बच रहेगा या नहीं!

सदानन्द की दृष्टि सड़क के किनारे एक छोटे फाटक के ऊपर लगे बडे बोर्ड पर गयी—'आर्यसमाज मंदिर'। सोचा—वह आर्यसमाज मंदिर मे ही रात क्यों न बिताये। लाहौर आर्यसमाज मदिर मे कभी-कभी कोई सज्जन ठहर जाते थे। वह आर्यसमाज मदिर के चौकीदार या चपरासी से बात करके रात बिताने की अनुमति ले सकता है।

सदानन्द आर्यसमाज मंदिर के फाटक के ढालू रास्ते पर उतर गया। मदिर के सामने अच्छे बडे समतल आगन में कुछ किशोर व्यायाम के लिये गदका-फरी का, कुछ बनैठी-बाने का अभ्यास कर रहे थे। मन्दिर के सामने तख्त पर एक प्रौढ़ महाशय बैठे थे। ऊनी कोट-पैजामा, खिचड़ी मूंछे किशोरों को व्यायाम के लिये उत्साहित कर रहे थे। सदानन्द ने उन्हे पहली नजर मे ही पहचान लिया—मंत्री जी अर्जीनवीस साहब। प्रधान जी आर्यसमाज के वार्षिक उत्सव पर लाहौर आते थे तो प्रायः मत्री जी अर्जीनवीस साहब उनके साथ रहते थे। सदानन्द पिता के साथ प्रधान जी को नमस्ते करने आता था तो अर्जीनवीस साहब को भी देखता था। आर्यसमाजी क्षेत्र मे मत्री जी के धर्मोत्साह और समाजसेवा की प्रशसा थी। सुना था, अर्जीनवीस साहब भी खत्री बिरादरी औ

किसी दूर-दराज रिश्ते से अपने सम्बन्धी भी माने जा सकते थे।

सदानन्द ने मंत्री जी को अपना परिचय देना आवश्यक नहीं समझा। अर्जीनवीस साहब उसे पहचान लेंगे ऐसी आशंका नही थी। सदानन्द ने उन्हें नमस्ते कर निवेदन किया—लाहौर में बी० ए० की परीक्षा देकर घूमने चला आया है। आर्यसमाज मंदिर मे रात बिता सकने की अनुमति चाहता है।

मंत्री जी ने ध्यान से सदानन्द के चेहरे-मोहरे का जायजा लिया। पूछा—किस कालेज मे पढ़ते हो, नाम-धाम कहां हैं? सदानन्द ने संक्षिप्त उत्तर मे बताया—घर मुद्दत से लाहौर मे ही है। मंत्री जी ने उसे मंदिर में रात बिता सकने की अनुमति दे दी।

सदानन्द को क्रिकेट, हाकी, फुटबाल खेल सकने की सुविधा नहीं थी। कभी-कभी अपने मोहल्ले के समीप 'हिन्दू व्यायामशाला' में जाकर गदका-फरी-बनैठी से शौक पूरा कर लेता था। वह आंगन मे अभ्यास करते लडको को गदके और बाने के दांव और पैंतरे बताने लगा। मंत्री जी प्रसन्न हुए।

सूर्यास्त हो जाने पर लडको ने गदके, बाने-बनैठी एक कोठरी मे समेट दिये और मंत्री जी को नमस्ते कह कर विदा होने लगे। मंत्री जी स्वयं चलने के लिये उठे तो चिन्ता के स्वर मे सदानन्द को सम्बोधन किया—"काका जी, तुम्हारा सामान बिस्तरा-विस्तरा कहां है?"

सदानन्द ने कुछ झेंपकर अपने बैग की ओर संकेत किया—"मेरा सब सामान इसी मे है।"

मंत्री जी ने विस्मय प्रकट किया—"बिना रजाई-कम्बल रात कैसे बिताओगे? तुम्हारे शरीर पर कोई गर्म कपडा भी नही है।'

सदानन्द ने मंत्री जी को आश्वासन दिया—"चिन्ता न कीजिये। बोझ से बचने के लिये ऐसे ही घूमने निकला हूं। मुझे सर्दी से कष्ट नहीं होगा।" उसने अपनी सहन-शक्ति दिखाने के लिये सीना फुला लिया।

"क्या कह रहे हो काका जी!" मंत्री जी हंस दिये—"यह लाहौर नहीं है। घंटे भर मे तो आग सेकने की जरूरत पड़ेगी। चलो हमारे गरीबखाने पर चलो।"

सदानन्द ने संकोच से मंत्री जी से चिन्ता न करने का अनुरोध किया परन्तु उनके आग्रह पर अपना बैग उठाकर मंत्री जी के साथ चल देना पड़ा।

सदानन्द ने मंत्री जी से बातचीत कांगड़ा जिले की बोली पहाड़ी भाषा में न की थी। मंत्री जी भी उससे पंजाबी में बात कर रहे थे। घर पहुँचकर मंत्री जी ने सदानन्द को बैठक में बैठाया और स्वयं भीतर आंगन में चले गये। सदानन्द को मंत्री जी का स्वर सुनायी दिया। मंत्री जी ने गृहिणी को ऊंचे स्वर में पुकार कर सूचना दी""सुनो एक मेहमान है। खाने के लिए क्या बनाया है? लाहौर से आया है। अच्छे घर का लड़का है। रात यहीं रहेगा। उसके पास गर्म कपड़ा नहीं है कोई शाल या लोई बैठक में भेज दो। मंत्री जी घर में पहाड़ी बोल रहे थे। सदानन्द सब समझ रहा था। उसके पिता उससे सदा पहाड़ी में ही बातचीत करते थे। वह स्वयं भी पहाडी बोल सकता था।

मंत्री जी बैठक मे लौटे तो पश्मीने का एक शाल सदानन्द के लिये बांह पर था, बोले—"नौकर गुसलखाने में गरम पानी रख देता है। तुम हाथ-मुंह धो लो। तब तक दस मिनट मे सध्या कर लूं। खाना तैयार है।"

मंत्री जी एक चौकी पर बिछे ऊनी आसन पर सध्या के लिये बैठ गये। छोकरे नौकर ने सदानन्द को गुसलखाना दिखला दिया। उसके लिये साफ तौलिया-साबुन रख दिया था। सदानन्द हाथ-मुंह धोकर मंत्री जी की संध्या पूरी हो जाने की प्रतीक्षा कर रहा था। शाल देखकर उसे सर्दी अनुभव होने लगी। शाल ओढ लिया। घर के भीतर से कुछ तलने, छौंकने की गंध, आहट आ रही थी।

सदानन्द मंत्री जी के साथ भोजन के लिये बैठा। सामने छोटी चौकियां रखकर थालियां परोसी गयी। वह समझ गया कि पहले से तैयार नित्य के साधारण भोजन के अतिरिक्त उसके स्वागत के लिए कुछ और भी तैयार कर लिया गया था। कटोरी में घी-शकर भी था।

सदानन्द भोजन के पश्चात् मंत्री जी के साथ बैठक मे आया तो सर्दी अच्छी खासी हो गयी थी। मत्री जी बोले—"अभी आठ ही बजे हैं। तुम्हे थकावट

कारण नींद आ रही हो तो तुम्हारे लिये जल्दी बिस्तर लगवा दें । चाहो तो कुछ देर बैठ लो ।"

सदानन्द ने पिछली रात गाड़ी में ऊंघते-ऊंघते काटी थी । परन्तु यजमान को अपने लिये शीघ्र बिस्तर लगाने के लिये कैसे कहता । बोला—"जी नहीं, मुझे थकान नहीं है । बहुत जल्दी नींद भी नहीं आती ।"

"अच्छा तो कुछ देर बैठो ।" मंत्री जी बोले और नौकर को फिर पुकार लिया—"करमू, थोड़ी आग दे जा ।"

करमू एक तसले में सुलगे हुए कोयले और लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े ले आया । अंगारे उसने दीवार में बनी अंगीठी में डाल दिये । अंगारों पर लकड़ियां रख कर फूंकने लगा । मंत्री जी बोले—"जा, तू दूसरा काम देख । हम खुद जला लेंगे ।"

अंगारों पर रखी लकड़ियां धुआं देती रहीं, लपटें न उठीं । मंत्री जी समीप पड़ा अखबार मोड़ कर अंगीठी में हवा देने लगे । सदानन्द अंगीठी की ओर बढ़ गया—"लाइये मैं जलाता हूं ।" मंत्री जी के हाथ से अखबार लेकर स्वयं जोर से हवा देने लगा परन्तु लपटें न उठीं । लकड़ियां धुआं देती रहीं ।

मंत्री जी बोले—"यह ऐसे नहीं जलेगी । लकड़ियां ठीक से नहीं लगी हैं ।" मंत्री जी उस कठिनाई में अभ्यासवश पहाड़ी बोलने लगे थे । अंगीठी की ओर झुक कर लकड़ियों को आग पकड़ सकने की स्थिति में रखने लगे । सदानन्द भी लकड़ियों को ढंग से लगाने में सहायता कर रहा था । मंत्री जी आग पर झुक कर उसे फूंकों से सुलगाने का यत्न कर रहे थे । सदानन्द ने भी लपटें उठा सकने के लिये अपने सशक्त फेफड़े से खूब गहरी और लम्बी-लम्बी फूंकें दीं परन्तु लपटें न उठीं । अधिक धुआं उठने लगा । मंत्री जी ने परेशानी प्रकट की—"क्या हो गया इन लकड़ियों को !" वे पहाड़ी में बोले थे ।

सदानन्द की आंखें धुयें से चरचरा रही थीं । आंखें मलते-मलते उसके मुंह से निकला—"लकड़ सिल्ने न ।" (लकड़ियां गीली हैं) । मंत्री जी के पहाड़ी सम्भाषण के प्रभाव में वह भी पहाड़ी बोलने लगा था ।

मंत्री जी ने चौंक कर सदानन्द की ओर देखा । लौहरी नौजवान को अपनी

तरह पहाड़ी में बोलते देख विस्मित थे—"तुम लाहौर में पढ़ते हो, घर तुम्हारा कहां है ? कौन बिरादरी हो ?"

सदानन्द को बताना पड़ा—वह पहाड़ी ही है, नगरोटा का खत्री।

मंत्री जी ने भौं सिकोड़ कर जिज्ञासा की—"नगरोटा के खत्री ? बाप-दादा का नाम-धाम तो बताओ।"

सदानन्द ने अपने पिता और दादा का नाम बताया।

मन्त्री जी ने धुंआती लकड़ियों की चिन्ता छोड़ अपनी स्मृति को कुरेदा—"अच्छा, अच्छा तुम····के लड़के हो ? बी० ए० की परीक्षा दी है ?"

"जी हां।" सदानन्द ने स्वीकार किया।

"कालेज की पढ़ाई मे तो काफी खर्चा होता है।" मन्त्री जी ने सदानन्द के पिता का नाम लेकर पूछा—"····इतना कमा लेता है ?"

सदानन्द ने गम्भीरता से उत्तर दिया—"एक-दो ट्यूशनें करता रहा हूं।"

मन्त्री जी ने सराहना की—"शाबाश बरखुर्दार ! बहुत खुशी हुई सुनकर। आगे क्या इरादा है ?"

"परीक्षा के परिणाम के पश्चात ही निश्चय कर सकूंगा।" सदानन्द ने उत्तर दिया। एक आठ-नौ वर्ष की लड़की बैठक मे आयी। उसने हाथ जोड़ कर सदानन्द को नमस्ते की और मंत्री जी को सम्बोधन किया—"मा जरा बुला रही हैं।"

मंत्री जी लड़की के साथ चले गये। भीतर से सदानन्द को उनका स्वर सुनायी दिया—"क्यों, क्या है ?"

पल भर बाद सुनायी दिया; मंत्री जी पहाड़ी में बोले थे—"अरे कहीं भी खाट डाल दो। चपरासी का लड़का है। जरा भारी कपड़ा दे देना। गरीब को जाड़ा न लगे।"

सदानन्द ने सुना। एक गहरी सांस उसके फेफड़े से उठी और गर्दन जरा झुक गयी। मंत्री जी पन्द्रह-बीस मिनट तक बैठक मे न लौटे। करमू आया, उसने सदानन्द को सम्बोधन किया—"चलो सो जाओ। गद्दा-कम्बल ले लो।"

सदानन्द को अपना बेग उठाकर नौकर के साथ जाना पड़ा। उसके लिये

खाट घर के भीतरी कमरे मे नहीं, घर के पिछले भाग में गोहरन के समीप नौकरों के लिये उचित स्थान में लगायी गयी थी। सदानन्द बहुत देर तक खाट पर करवटे बदलता रहा। बिछौने-ओढने के लिये काफी कपडा था। सर्दी से कष्ट अनुभव नही हो रहा था परन्तु पिछली रात और दिन भर की थकावट के बावजूद नीद बहुत देर तक न आयी। उसका मन क्षोभ से उबल रहा था—क्यो आया वह ऐसी सैर के लिये !

घर के भीतर बाल्टी-बर्तन खटकने से सदानन्द की नीद खुली। छाजन के बाहर अभी झुटपुटा ही था और वायु मे गहरी भरी हुई ओस कड़ी सर्दी का आभास दे रही थी परन्तु सदानन्द के लिये रात की बात की स्मृति से गरम बिस्तर में लेटे रहना सम्भव न रहा। उस घर मे किसी से आंख नही मिलाना चाहता था।

सदानन्द बिस्तर छोडकर उठ खड़ा हुआ। शाल बिस्तर पर रख दिया। खाट के सिरहाने रखा बैग उठाने के लिये झुकते हुए झिझका। जाने से पहले इन लोगों से पायी सहायता के लिये धन्यवाद न देना अनुचित होगा।

सदानन्द ने दांत पीस कर अपना बैग उठा लिया—अभी नही, अनुचित ही सही। दो-ढाई वर्ष में एम० ए० की परीक्षा पास कर कुछ बन जाने के बाद जब इन लोगों से आंख मिला कर बात कर सकूंगा, तभी इस अनौचित्य का प्रायश्चित्त कर लूंगा। इन लोगो को भी तब अधिक सन्तोष होगा।

सदानन्द बैग हाथ में लिये मंत्री जी के मकान के पिछवाड़े से निकल गया।

भली लड़कियां

लीला और मुक्ता बचपन से पड़ोसिनें, सहपाठिनें और सहेलियां हैं। गत वर्ष साथ-साथ एम० ए० किया है। दोनों पढ़ने में अच्छी रही हैं। अपने संयमित व्यवहार का गर्व भी है। अब मनोविज्ञान में पी-एच० डी० के लिये शोधकार्य कर रही हैं।

सदानन्द मिश्र भी मनोविज्ञान मे पी-एच० डी० के लिये निबन्ध लिख रहा है। वह दोनों लड़कियों से दो वर्ष सीनियर है। तीनो विभाग के असिस्टेन्ट प्रोफेसर डॉक्टर अस्थाना के निर्देशन में हैं। मिश्रा विशेष योग्य, अध्ययनशील माना जाता है। मजाक करता है तो दूसरे हंसकर लोट-पोट हो जायें और स्वयं मुस्करा भर दे।

डॉक्टर अस्थाना ने गत वर्ष यूनेस्को से 'जनसाधारण में चुनाव सम्बन्धी राजनैतिक चेतना' के अनुसन्धान के लिये अनुदान प्राप्त कर लिया था। स्त्रियों मे खोज और सम्पर्क का काम उन्होंने मुक्ता और लीला को दिया। कुछ वृत्ति और खर्च का भी प्रबन्ध था। लीला और मुक्ता दो-तीन दिन नगर के गली-मुहल्लों में अनेक वर्ग की स्त्रियों के सम्पर्क में आकर नोट लेतीं और डॉक्टर अस्थाना को रिपोर्ट दे देतीं। मिश्रा रिपोर्ट के वर्गीकरण मे डॉक्टर अस्थाना को सहायता दे रहा था।

अनुसन्धान सम्बन्धी काम देहात और कस्बों में भी होना चाहिये था, परन्तु डॉक्टर अस्थाना लड़कियों को नगर से दूर अकेली जाने के लिये कैसे कहते। चुनाव में अब आठ-दस दिन का ही समय शेष था। डॉक्टर को याद आया, मिश्रा का मलीहाबाद के कस्बे मे परिचय है। मिश्रा अपनी कार में यूनिवर्सिटी आता है। उन्होंने मिश्रा से अनुरोध किया—"इस रविवार तुम लीला और मुक्ता को अपनी गाड़ी मे मलीहाबाद घुमा लाओ। वहां कुछ काम कर लें। तुम्हे भी

कुछ जाच-पडताल का मौका रहेगा। तुम्हारी पिकनिक हो जायेगी।" मुस्कराये, "अच्छी संगत है"""हैव गुड टाइम। पेट्रोल का बिल हमें दे देना।"

लीला और मुक्ता प्रसन्न थी, काम का काम और पिकनिक। दोनो ने मिश्रा को आश्वासन दिया—लंच हम साथ ले लेंगी। उन्होने प्रातः नौ बजे कोपर रोड पर मुक्ता के मकान के सामने प्रतीक्षा मे रहने के लिये कह दिया।

× × ×

रविवार को मिश्रा पेट्रोल पम्प से गाड़ी मे पेट्रोल लेकर चला तो कुछ याद कर पल भर ठिठका। नौ बज रहे थे। सोचा, लड़किया परेशान न हों। रास्ते मे भी दुकानें हैं।

लडकियां मुक्ता के दरवाजे पर प्रतीक्षा कर रही थीं। उसने लड़कियो की टिफिन बास्केट और थर्मस पिछली सीट पर रख दिये और दोनो को अपने साथ आगे बैठा लिया कि रास्ते मे बातचीत का अवसर रहे। मुक्ता मिश्रा की ओर थी और फिर लीला।

मिश्रा ने विशेश्वरनाथ रोड पर कैसरबाग से कुछ पहले गाड़ी बाये फुटपाथ के साथ खड़ी कर दी। लडकियों की ओर देखा—"एक मिनट!" वह दाहिने हाथ सड़क लांघ कर एक छोटी-सी दुकान मे चला गया।

लड़कियो की नज़र उसके पीछे थी। मिश्रा ने दुकान से एक सफ़ेद बोतल ली। बोतल पर नीला लेबिल।

लीला के माथे पर तेवर आ गये। मुक्ता के कान मे फुसफुसायी—"इन्होने तो शराब खरीदी है।"

मुक्ता ने आतक से पूछा—"तुम्हे कैसे मालूम? जानती हो?"

"हां, मेरे मामा को लत है।" लीला ने हामी भरी। "एक बार हमारे मेहमान थे तो बोतल ले आये थे। ऐसी ही सफेद बोतल, नीला लेबिल। बहुत परेशानी हो गयी थी।"

मुक्ता ने देसी या बिलायती शराब की बोतल कभी नही देखी परन्तु उसके वीभत्स परिणामो की बाते जरूर सुनी हैं और शराब से असह्य घृणा।

मिश्रा बोतल हाथ में लिये सडक लांघ आया। वह गाडी का दरवाजा खोल

रहा था कि मुक्ता बोल पड़ी—"आप शराब ले जा रहे हैं। हम आपके साथ नहीं जायेंगे।"

मिश्रा चौंका और मुस्करा दिया। गाड़ी में बैठकर बोतल ग्लव कम्पार्टमेण्ट मे रख ली। "आपको एतराज है?" उसने गाड़ी चालू कर दी।

मुक्ता दृढ़ता से बोली—"जरूर एतराज है।"

लीला ने सहयोग दिया—"ऐसी हालत में हम आपके साथ नही जाना चाहती। हमे उतर जाने दीजिये।"

मिश्रा ने नजर सामने किये गाड़ी तेज कर दी। कैसरबाग से चौड़ी सड़क पर आकर गाड़ी की चाल और बढ़ा दी, बोला—"बोतल बन्द है तो आपको क्या एतराज?"

मुक्ता ने चेतावनी दी—"जब तक हम साथ हैं, आप बोतल नही खोलेंगे।"

मिश्रा ने गाड़ी और तेज कर दी—"ऐसी क्या मजबूरी है?"

मुक्ता क्रोध से बोली—"तो हमे उतार दीजिये।"

लीला ने साथ दिया—"नहीं, हम नहीं जायेंगे।"

कुछ क्षण मे खूब तेज दौड़ती गाड़ी डालीगंज के पुल से आगे बढ़ गयी। सदानन्द बोला—"पूरी बोतल अकेला ही नहीं पी जाऊंगा।"

मुक्ता भभक उठी—"आप क्या बक रहे हैं? गाड़ी रोकिये!" लीला ने भी सहयोग दिया।

कुछ और आगे बढ़ने पर मिश्रा गम्भीरता से बोला—"कोई अभद्र बात या अपशब्द तो मैंने नहीं कहा।"

"कुछ भी हो, हम आपके साथ नही जायेंगी। हमें उतर जाने दीजिये।" लड़कियों को बहुत गुस्सा आ गया था।

सदानन्द कुछ और आगे बढ़ गया ठाकुरगंज तक। धीमे से बोला—"आप बेकार डर रही हैं।"

मुक्ता ने तड़ाक जवाब दिया—"हम क्यों डरेंगी? क्या कर सकते हैं आप? हम भी दो हैं!"

मिश्रा मुस्कराया—"तो निश्चिन्त बैठिये।"

"देख लेंगे !" मुक्ता ने होंठ काट कर चुनौती दी ।

× × ×

सड़क पर बस्ती समाप्त हो जंगल-सा आने लगा । लीला और मुक्ता सशंक एक दूसरे के सहारे संकट का सामना साहस से करने के लिये परस्पर कन्धे सटाकर बैठी थीं । तीनों की नजरें सामने । तीनों चुप । कुछ मिनट में सड़क के दोनों ओर गांव आने लगे । लड़कियों ने भरोसा अनुभव किया । पन्द्रह-बीस मिनट कोई न बोला । मिश्रा गाड़ी को खूब तेज लिये जा रहा था ।

घनी बस्ती आने पर मिश्रा ने बताया—"यही मलीहाबाद है ।" एक चौड़ी गली में गाड़ी घुमा कर कहा, "यहां की अपरिचित देहाती बस्ती में आप अकेली नहीं घूम सकेंगी । मेरे परिचित एक खान साहब हैं । उनसे मिलकर आपके लिये जनाना साथ का प्रबन्ध कर दूं ।"

मिश्रा ने गाड़ी एक पुराने बड़े मकान के सामने खड़ी कर दी । उसने आवश्यक इन्तजाम भी कर दिया । वह जनाने में लड़कियों के साथ नहीं जा सकता था । उन्हें दो बजे तक लौट आने के लिये कह दिया । स्वयं भी घूमने चला गया ।

मुक्ता और लीला को मिश्रा के व्यवहार से कुछ सांत्वना हुई—आदमी उतना खतरनाक नहीं है । आखिर भले घर का है । उनके लौटने पर मिश्रा ने सरलता से पूछा—"कुछ सफलता मिली ?" लड़कियों ने उसकी सहायता के लिये धन्यवाद दिया । अब आश्वस्त थीं ।

लौटने के लिये बस्ती से बाहर सड़क पर आते ही मिश्रा ने कहा, "आपकी टिफिन बास्केट भूख चेता रही है ।"

लड़कियों ने उत्तर दिया—"जरूर !"

मिश्रा ने प्रस्ताव किया—"उधर स्टेशन की ओर एक बड़ा बाग है अमरूद का, वहां चलें ?"

लड़कियों को बोतल याद थी । मुक्ता सावधानी के विचार से बोली—"समय बरबाद होगा । यहीं सड़क किनारे ही ठीक है ।" उसने एक बड़े पेड़ की ओर संकेत किया ।

मिश्रा ने गाड़ी सड़क से उतार दी। टिफिन बास्केट गाड़ी से निकाली। बास्केट में रखी दरी पेड़ के नीचे बिछा दी। लड़कियां काफ़ी सामान लायी थीं। प्लेटों में सैण्डविच और मिठाई लगाने लगीं।

मिश्रा एक ओर खड़ा देख रहा था। सहसा बोल पड़ा—"ओह !" जैसे कुछ याद आ गया हो। गाड़ी की ओर बढ़ गया। लड़कियां कनखियों से उधर देख रही थीं। मिश्रा ने ग्लव कम्पार्टमेण्ट से बोतल निकाली और दो कदम दरी की ओर बढ़, ध्यान पाने के लिये खांस कर बोतल की सील-डाट खोलने लगा।

मुक्ता तमक कर खड़ी हो गयी—"हमने कह दिया था आप बोतल नहीं खोल सकते।"

मिश्रा गम्भीर स्वर में बोला—"तो बेकार ही साथ लाया हूं।" उसने बोतल का डाट खोल लिया था।

लड़कियां क्रोध से क्षुब्ध होकर सब चीजें फिर टोकरी मे समेटने लगीं। मिश्रा उनके क्रोध की परवाह न कर मोटर की ओर गया। इंजन का हुड खोला। इंजन पर झुक कर कुछ पेंच खोले और सफेद बोतल में से एक तिहाई तरल पदार्थ इंजन के एक भाग मे उंडेल कर पेंच और हुड बन्द कर दिये। तब तक लीला और मुक्ता सब सामान और दरी समेट कर एक ओर खड़ी हो गयी थी और हैरान।

मुक्ता और लीला के घरों में मोटरें नहीं हैं। जानती थी, मोटर में पेट्रोल डाला जाता है परन्तु शराब या स्पिरिट भी डाली जाती है, नहीं सुना था। अब उन्हें बेवकूफ बनायी जाने का क्षोभ था।

मिश्रा का विचार था, लड़कियां अपनी भूल समझ कर झेंप से हंस देंगी। उन्हें रूठ कर मुंह फुलाये खड़ी देखा तो खीझ गया। मिश्रा ने बोतल फिर ग्लव कम्पार्टमेण्ट मे रख दी। रूठी हुई लड़कियों को साथ बैठाने में क्या संतोष होता।

मिश्रा ने लड़कियों के लिये पिछली सीट का दरवाजा खोल दिया। लीला और मुक्ता बास्केट लेकर पीछे बैठ गयीं। मिश्रा ने गाड़ी सड़क पर लाकर लखनऊ

की ओर चाल तेज कर दी। तीनों मुह फुलाये चुप बैठे थे।

मिश्रा सोच रहा था—जाहिलों की संगति। एम० ए० पास लड़कियों की जानकारी! खूब बढ़िया पिकनिक और गुड टाइम रहा। खयाल आया कि बता दे शराब नही है, मोटर की बैटरी मे डालने के लिये खीचे हुए पानी की बोतल है। पर बोला नहीं। तबीयत खीझ गयी थी। मालूम नही था तो पूछ लेती। अपने अज्ञान की ही ऐंठ है तो मौज करें।""शराब के बारे मे कुछ नहीं जानती, इसी बात का गर्व है। इसीलिये भली हैं।""

दाग ही दाग

मिस्टर सिंह को खयाल रहता है कि उसके कारण मातहतों को असुविधा न हो। उन दिनों दफ्तर में काम अधिक रहता था परन्तु वह ठीक पांच बजे फाइलें अर्दली को मकान पर पहुँचाने के लिये सौंप कर उठ जाता। घर लौटने पर चाय तैयार मिलती। चाय के बाद एक सिगरेट और दस-पन्द्रह मिनट विश्राम से ताजा होकर वह दो घण्टे और काम कर लेता।

उस संध्या सिंह का मन सात बजे ही काम से ऊब गया। गरमी भी बहुत थी। हाथ में ली हुई रिपोर्ट समाप्त कर फाइल एक ओर रख दी। बैठक में आकर उसने ताजी हवा के लिये बरामदे की ओर का दरवाजा खोल कर परदा सरका दिया। दरवाजे पर चिक पड़ी थी। पंखा तेज कर सोफा-कुर्सी पर बैठ गया। सिगरेट सुलगा कर सोच रहा था—कुछ समय दिल बहलाने के लिये कहां हो आये; क्लब, कॉफी-हाउस या डाक्टर निगम के यहां ? ऐसी गरमी में निगम के यहां फ्रिज की ठंडी बियर की आशा हो सकती थी। सिंह निगम के यहां गत मास दो बार बियर पी चुका था परन्तु उसे एंटरटेन कर सकने का अवसर न मिला था। सोचा, दो-ढाई घण्टे का समय है। निगम को फोन करके किसी बार में आ जाने के लिये कह दे।

उस समय मकान में सिंह और नौकर, दो ही आदमी थे। स्कूलों में गरमी की लम्बी छुट्टी हो गयी थी। मां लखनऊ की गरमी से बचने के लिये, दो सप्ताह पूर्व सिंह की भतीजी को लेकर, अपने बड़े बेटे के यहां देहरादून चली गयी थी। नौकर सिंह को चाय देकर अपने गांव के किसी आदमी को स्टेशन पर विदा देने के लिये साढ़े नौ तक छुट्टी ले गया था। दरवाजे पर ताला लगा कर दो-ढाई घण्टे के लिये बाहर चले जाने में कोई असुविधा न थी। निगम के यहां फोन किया। निगम कुछ मिनट पहले क्लब चला गया था। क्लब में निगम के साथ

तीन-चार दूसरे लोग चिपके रहते थे। सिंह ने सोचा—इतने लोगों में मित्रता फैलाना, सबको एंटरटेन करना अपने बस का नहीं।""क्या लेना है बाहर जाकर। उसने शेल्फ की ओर नज़र डाली, कुछ पढ़कर समय काटे।

सिंह को मकान के बाहर लोहे का छोटा फाटक खुलने का खटका सुनायी दिया। अनुमान कर रहा था—कौन होगा ? बरामदे की कुर्सी और फिर बरामदे के ईंटों के फर्श पर जनाना जूते की एड़ियों की खुट-खुट आहट हुई। दरवाजे की चिक उठी, एक युवती ने भीतर झांक कर विनय की मुस्कान से पूछ लिया—"क्षमा कीजिये, मैं आ सकती हूँ ?"

सिंह को उस युवती के आगमन की आशा तो क्या कल्पना भी न हो सकती थी। विस्मय से उसकी आंखे फैल गयीं। आदर के लिये खड़ा हो गया। मुस्कान से स्वागत किया—"आइये ! आइये !" और विनय से सोफा की ओर संकेत किया, "पधारिये !" सिंह की स्मृति में गहरी दबी कुछ बाते धीमी सी कौंध गयी। युवती के बैठ जाने तक दब चुकी स्मृतियां जाग कर अगड़ाइयां लेने लगी।

सिंह युवती के सामने कुर्सी पर बैठ गया—"मुद्दतों बाद दर्शन हुए। आप मज़े से हैं ?"

युवती मुस्करायी—"पहचान लिया आपने ?"

सिंह ने भौंवे उठाकर अपनी स्मरणशक्ति के प्रति युवती के सन्देह पर आपत्ति की—"क्यों, मुझे पहचानने मे आपको दुविधा हो रही है ?" वह सोच रहा था कि इतने वर्ष बाद भी क्या युवती को उसके कौमार्यावस्था के नाम से ही सम्बोधन करना उचित होगा।

"पहचानने में मुझे असुविधा ?" युवती मुस्करायी, "आपको भूल सकती तो आपको खोज कर यहां पहुँचती कैसे ? भूल तो आप ही सकते थे।"

सिंह ने अपनी स्मृति का प्रमाण दिया - "आपको मिस हेमा माथुर ही सम्बोधन करना उचित होगा""या आप ?"

युवती कटाक्ष से मुस्करायी—"अहो भाग्य। मैं जैसे याद रही हूँ वैसे ही याद रखिये, हेमा ही पुकारिये। औपचारिकता के लिये पहले या बाद मे उपसर्ग या अनुसर्ग लगाने की जरूरत नहीं।"

सिंह को हेमा के कटाक्ष से याद आ गया—वह परीक्षा की तैयारी के दिनो में पढ़ने के लिये यूनिवर्सिटी के समीप पार्क में जा बैठा था। हेमा यूनिवर्सिटी की चार-पांच लड़कियों के साथ पार्क में आ गयी थी। उसे अकेला पाकर हेमा ने दूसरी लड़कियों को साथ ले उसे परेशान कर दिया था। सिंह ने लड़कियो के अनुचित व्यवहार के लिये उनकी प्रताडना का यत्न किया तो वे पांचो 'हियर-हियर !' ताली बजाने लगी। यूनिवर्सिटी में हेमा कुछ ज्यादा तेज और चुलबुली थी। सिंह को लगा—इसके शरीर में भी विशेष अन्तर नही आया, स्वभाव तो वैसा ही है। पूछा—"इधर किसके यहां आयी हैं ?"

हेमा मुस्करायी—"आपके यहां।"

सिंह ने फिर सोचा—हेमा बिलकुल नहीं बदली। तेज तब भी थी परन्तु पाठ्यक्रम से बेपरवाह। उसने झेंप छिपा कर कहा—"मेरा सौभाग्य। सही है, इस समय तो आपने मुझ पर कृपा की है। बाहर मेरे नाम पर नज़र पड गयी होगी। मेरा अभिप्राय है, लखनऊ में या इस मुहल्ले मे आपके कोई परिचित होगे ?"

हेमा हंसी—"कह रही हूँ, आपको खोज कर आपके ही यहां आयी हूं।"

सिंह ने अपनी झेंप को मुस्कान मे बदला—"ऐसी कृपा के लिये विशेष धन्यवाद। कहिये, कहां से आना हुआ या आजकल लखनऊ में ही हैं ?"

हेमा सोफा-कुर्सी पर कुछ और सुविधा से हो गयी—"जी नही, सीधी स्टेशन से आ रही हूं।"

"सिंह ने शंका प्रकट की—"स्टेशन से ?"

"जी हां, स्टेशन से।" हेमा ने उत्तर दिया, "पौने सात की गाड़ी से उतरी हूं। इलाहाबाद की गाडी पकडनी है। तीन घण्टे स्टेशन पर क्या करती ? सामान वेटिंग रूम मे सहेज आयी हूँ। कुछ चाय-वाय तो पिलवाइये।"

"ज़रूर !" सिंह ने स्वीकार किया—परन्तु चिन्ता हुई, अभी नौकर घर मे है नही। स्टेशन से आये अतिथि के चाय मांगने पर उससे चाय के लिये हज़रत-गंज चलने का प्रस्ताव उचित होगा ? उपाय सोचने के लिये हेमा से पूछा—"चाय इस गरीबखाने में ही पियेंगी या हज़रतगंज चलकर आपके लायक किसी

अच्छे रेस्तरां मे पी जाये ?"

हेमा ने कन्धे की थिरकन से थकान प्रकट की—"आपकी शरण आयी हूं। इस समय यही मेरे लिये स्वर्ग है। बहुत थकी हुई हूं। जरा देर आपके पास बैठूंगी, बात करूंगी। कही जाने का मन नही है।"

"अहो भाग्य। सिर आंखों पर।" सिंह कुर्सी से उठ खड़ा हुआ—"ठीक है। यहां ही बन जायेगी। नौकर जरा छुट्टी लेकर गया है। बनाता हूँ।"

हेमा ने विस्मय से पूछा—"आप बनायेंगे ?"

"मुझे बनाने में कोई तकलीफ नहीं होगी। बिजली की केटली है। रसोई मे सब कुछ होगा।"

"क्यो, मकान में और कोई नही है ?" हेमा ने पूछा—"यहां आप अकेले ही रहते हैं ?"

सिंह ने बताया —"यों तो मां और मेरी भतीजी यही रहती हैं। आजकल स्कूलों मे छुट्टी है। वे दोनों देहरादून गयी है निश्चिन्त रहिये। चाय बनाने मे मुझे कोई परेशानी नहीं होगी। प्रायः बना लेता हूँ।"

हेमा भी हंसकर उठ खडी हुई—"चलिये, मै बनाती हूं। बात भी करते जायंगे। आपका मकान भी देख लूंगी।" मुस्करायी, अनाडी आदमी की बनायी चाय में क्या मजा आयेगा।

"क्यों कष्ट करेंगी।" सिंह ने अनुरोध किया—"मानिये, मैं कई बार स्वयं बना लेता हूं।"

हेमा नहीं मानी —"मैं यहा अकेली बैठी क्या करूंगी ? चलिये आपकी रसोई देखे।" वह सिंह के साथ हो ली।

सिंह ने रसोई में जाकर बिजली की केतली मे पानी लगा दिया। चाय-पत्ती, चीनी और प्याले-चम्मच ढूंढ़ने के लिये उसे इधर-उधर खोजना पड़ रहा था। हेमा बर्तनों और अन्य चीजो को उठा-उठाकर देख रही थी। बोली—"आपका नौकर होशियार मालूम होता है। सब्जियां बनाकर और आटा गूंध कर रख गया है। लौटकर तुरन्त खाना दे सकेगा।"

सिंह ने स्वीकार किया—"हां, समझदार तो है। साढ़े नौ-दस बजे बनाना

शुरू करता तो खाना देने मे बहुत देर हो जाती ।"

हेमा मुस्करायी—"स्मार्ट है तो चूना भी लगाता होगा ।"

सिंह हंसा—"हां, परन्तु सहला-सहला; बहुत तेज नही ।"

चाय के लिये दूध का ध्यान आया तो सिंह झेंप गया—"माफ़ करना ! इस समय दूध तो होगा नही !"

हेमा ने सब्जी की टोकरी मे से नीबू उठा लिया—"यह तो है, इससे हो जायेगा ।"

हेमा पानी उबलने तक चाय के बर्तन जुटाते-जुटाते सिंह से उसकी गत पांच वर्ष की गतिविधि के बारे मे पूछती रही—"मुझे याद है, आपने तो रिसर्च ज्वाइन किया था । कहां रिसर्च, कहां यह महकमा ! क्या-क्या करते रहे ?"

सिंह ने बताया—"रिसर्च ज्वाइन तो किया था परन्तु स्कालरशिप न मिल सका । इसलिये आई० पी० एस० (इंडियन पुलिस सर्विस) कम्पटीशन मे बैठा और सिलेक्शन में आ गया । ट्रेनिंग के बाद एक वर्ष बरेली मे, डेढ़ वर्ष कानपुर मे असिस्टेण्ट एस० पी० रहा । डेढ वर्ष से लखनऊ मे हूँ ।"

सिंह को हेमा के प्रश्नो के उत्तर देने के सिलसिले मे स्वयं प्रश्न करने का अवसर न मिला । उसे हेमा के विषय में जानने की विशेष उत्सुकता भी न था परन्तु विनय के नाते कुछ पूछना भी चाहिये था । वह इतना ही पूछ सका—"आजकल क्या कर रही हो ?"

"कुछ भी नही ।" हेमा ने टाल दिया—"जो कुछ लडकियां-स्त्रियां करती हैं, डोमेस्टिक सर्विस !" वह हंस दी—"छः महीने जरूर एक स्कूल मे काम किया था । बोर हो गयी, छोड़ दिया ।"

सिंह के मन में प्रश्न अवश्य आया कि हेमा का विवाह हो गया है या नही ? परन्तु एक तरह उत्तर मिल चुका था—मैं जैसे याद रही हूँ, हेमा ही पुकारिये । पूर्वापेक्षा उसके व्यवहार मे भी कुछ अन्तर नही दिखायी दिया । शरीर मे भी विशेष नही । पांच-छः बरस में बीस से इक्कीस हो गयी, इतना ही । इतना तो आयु से भी····।

यह भी खयाल था कि यदि विवाह अभी नही हुआ तो हेमा उत्तर देने मे

हीन-भावना अनुभव कर सकती है। युवा हो जाने पर भी अविवाहित रह जाने वाली लड़कियां इस प्रसंग से कतराती हैं। यदि हेमा ने उसके विवाह के सम्बन्ध मे पूछा होता तो वह भी ऐसा प्रश्न कर लेता परन्तु हेमा ने ऐसी जिज्ञासा नही की।

बैठक मे चाय रखकर सिंह ने कहा—"खाने के लिये भी कुछ निकाल लूं!"

हेमा मकान देखने के कौतूहल मे उसके साथ हो रही। इतने समीप कि दो-तीन बार उसकी कोहनी या कन्धा, सिंह की बांह या पीठ को छू चुका था। हेमा को जैसे ध्यान न था परन्तु सिंह को कुछ विचित्र सा लगा—तब से और अधिक निधड़क या निस्संकोच हो गयी है।

हेमा ने पूछ लिया—"खाने-पीने की चीजें भी बेडरूम मे और ताले-चाभी मे रखते हैं?"

"नौकर स्मार्ट हो तो सावधान रहना ही चाहिये।" सिंह मुस्कराया—"बिस्कुट-विस्कुट नौकर को सौंप देने से काम नही चल सकता। इस समय यहा चौकसी के लिये मां तो है नही।" उसने पैंट की जेब से चाभी निकाल कर आलमारी खोली।

हेमा कौतूहल मे सिंह की बांह से सट गयी थी। सिंह ने जिस स्थान से बिस्कुट के दो डिब्बे उठाये वहा हेमा को ह्विस्की की एक बोतल भी दिखायी दी। हेमा ने कौतूहल से पूछ लिया—"अच्छा, यह शौक भी है?"

"तुम्हें एतराज है? लखनऊ ड्राई नही है। एक-दो ऐसे दोस्त भी है?" कभी बड़े भाई साहब ही आ जाते हैं।" सिंह ने उत्तर दिया।

"दैट्स गुड!" हेमा मुस्करायी, "यू हैव इम्प्रूव्ड।"

हेमा चाय पीते-पीते सिंह को यूनिवर्सिटी के दिनो की कई घटनायें याद दिलाती रही। उसने इलाहाबाद की तुलना में लखनऊ के नागरिक जीवन और समाज के सम्बन्ध मे जानना चाहा। सिंह उसे कुछ अधिक सूचना नहीं दे सका। उसने बताया—"काम का बोझ इतना अधिक है कि दूसरी बातों की ओर ध्यान दे सकने के लिये समय ही नहीं रहता।"

हेमा हंसी—"स्टूडेण्ट लाइफ मे किताबों के कीड़े रहे और अब दफ्तर की फाइलों के कीड़े बन गये।"

सिंह अतिथि के व्यंग पर मुस्कराया—"नही, ऐसी बात नही है। सध्या प्रायः बाहर जाता हूँ। तुम से भी हज़रतगंज चलने के लिये कहा था, कहीं रेस्ट्रा मे ही चाय पीते तो ज्यादा अच्छा रहता।"

हेमा ने उसकी चिन्ता का निराकरण किया—"नही, मुझे इस समय घूमने की बिलकुल इच्छा नही है। तुम्हारे दर्शन के लिए आयी हूँ, हज़रतगंज के लिये नहीं। चाय मिल गयी। कुछ खा भी लिया। दो बाते कर लूं फिर गाड़ी पकड़नी है।"

सिंह ने अपनी कलाई पर घड़ी की ओर देखा—"आठ बीस हो रहे है। हज़रतगंज क्यों न चले। वहां तुम कुछ खा-वा सकोगी, फिर स्टेशन पहुँचा दूंगा। नौकर कुछ देर बाहर बैठ लेगा, कोई बात नही। यहां बैठे-बैठे क्या करेंगे ?"

"मैं तो तुम से बात करने के लिये आयी हूँ। क्यो, बहुत बोर कर रही हूँ ?" हेमा ने मुस्कराकर आंखे मिलायी।

सिंह ने क्षमा चाही—"सॉरी, बिलकुल नही। मैं तो सोच रहा था, तुम बोर हो रही होगी। बात करो न।"

हेमा ने सुविधा के लिये सोफा-कुर्सी से पीठ टिका ली—"मैं तो यात्रा से थकी हुई हूँ। तुम कुछ कहो-सुनाओ। इतने बरस बाद मिले है।" उसके स्वर मे आत्मीयता की झनकार आ गयी।

"मुझे तो इस समय, सहसा कहने-बताने लायक कोई बात सूझ नहीं रही।" स्मृति पर जोर डालने के लिये सिंह के माथे पर रेखाये बन गयीं—"दिमाग मे केसिस, रिपोर्ट्स और फाइले ही भरी हुई हैं। तुम सुनाओ कुछ।"

"मैं क्या बताऊंगी ?" हेमा बोली—"स्त्रियो के जीवन मे क्या अनुभव हो सकते हैं। ऐडवेंचर के अवसर तो पुरुषों के भाग्य मे ही होते हैं।"

सिंह मुस्कराया—"यह कैसे कहा जा सकता है, ऐडवेंचर के अनेक क्षेत्र हो सकते हैं। मेरी प्रकृति और कल्पना खास एडवेंचर्स नही रही। तुमने स्वयं

कहा, पहले किताबों का कीड़ा रहा अब फाइलों का। मुझे तो दफ्तरी रूटीन से ही फुरसत नहीं मिलती।"

हेमा भी मुस्करायी—"इतना हार्ड वर्क ! तभी तो आजकल इतनी धाक ब रही है।" और पूछ लिया—"कभी रूटीन की नीरसता से बोरडम या ऊब से मन नहीं छटपटाने लगता ? रिलाक्स होने की या थ्रिल की इच्छा नहीं होती ?"

सिंह ने गर्दन से इनकार का संकेत किया—"जहां तक याद पड़ता है, ऐसी विशेष ऊब अनुभव भी नहीं हुई। मेरा विचार है, काम में डूबे रहने पर, उसे ठीक ढंग से पूरा करने का ध्यान रहे तो ऊब के लिये अवसर कहां। हां, थकान हो सकती है।"

हेमा ने पूछा—"थकान ही सही, वह भी तो एक प्रकार का बोरडम होता है ......।"

सिंह ने इनकार में गर्दन हिलायी—"नो, आई डोन्ट थिंक। काम की थकान से तो संतोष होना चाहिये। बोरडम का अर्थ है करने को कुछ न होना।"

हेमा ने स्वीकार किया—"थकान ही सही, उसका क्या उपाय करते है।"

सिंह ने उत्तर दिया—"बोर होने का तो अवसर ही नहीं होता। काम से थकान अनुभव हो तो घूमने-टहलने चल दिये।"

"यदि घूमने जाने की इच्छा न हो ?" हेमा के स्वर में आत्मीयता के आग्रह की ध्वनि गहरी हो गयी।

"तो कुछ पढ़ लिया, कोई पुस्तक पत्रिका।"

"यदि पढ़ने की भी इच्छा न हो !"

"तो गप्प लगा ली, सिगरेट सुलगा ली और कुछ सोचते रहे।"

हेमा मुस्करायी—"तो फिर लगाओ सिगरेट और रिलेक्स होकर गप्प करो।'

सिंह ने उसकी ओर देखा—"मैं तनाव अनुभव नहीं कर रहा हूं। रिलेक्स होकर बात कर रहा हूं। खैर, सिगरेट लगा लूंगा। तुम कैसे रिलेक्स होगी; थकान तो तुम्हें है।"

"क्या मुझे आफर नहीं करोगे ?" हेमा ने विस्मय प्रकट किया।

सिंह को ऐसी आशा नहीं थी, जरा झेंप से मुस्कराया "अवश्य" और

उठकर हेमा के सम्मुख सिगरेट का टिन और माचिस पेश कर दिये।

हेमा ने सिगरेट लगा ली।

सिंह ने पूछा—"सिगरेट पीती हो तो पहले क्यों नहीं कहा ? चाय के बाद ही पेश करता।"

हेमा ने हल्का कश लिया—"साधारणत: पीती नहीं हूँ। तुमसे भेंट कोई साधारण बात है !" उसने सिंह की आँखों में देखा, "तुमने कहा, यह रिलेक्स होने का उपाय है। मेरे लिये एडवेंचर भी समझ लो।"

सिंह ने भी सिगरेट लगा ली—"तुम इसे एडवेंचर समझती हो ?"

"हमारे समाज की नारी के लिये इतना साहस भी एडवेन्चर ही समझो।" हेमा ने कहा, "मैं एडवेंचर के मूड में हूँ। बताओ, ये एडवेंचर नहीं है कि मैं यात्रा में अकेली तुमसे मिलने चली आयी ?"

"तुम्हारे इस अनुग्रह के लिये आभारी हूँ। पर मेरा पता कैसे मालूम किया ?" सिंह ने अन्तत: अपना विस्मय प्रकट किया।

"तुम्ही बताओ, तुम्हारा तो काम ही छानबीन कर पता लगा लेना है।" हेमा मुस्करायी।

"कुछ सोचना पडेगा। तुम ही बता दो।"

"जहाँ चाह, वहाँ राह।" हेमा हँस दी, "जनाब की कर्तव्यनिष्ठा और कुशलता की ख्याति फैल रही है। पिछली बार इलाहाबाद में तुम्हारी चर्चा सुनी थी, लखनऊ में हो। मन में मिलने की इच्छा थी तो पता पाने में क्या कठिनाई होती।"

"वास्तव में आभारी हूँ। तुमने इतना याद रखा और मिलने की इच्छा की।"

"तुमने भी कभी याद किया ?"

सिंह ने विनय के विचार से उत्तर दिया—"जरूर।"

"बताओ कब''' कैसे ?" हेमा ने आग्रह से पूछा।

"तुम्हे देखते ही आजाद पार्क की याद आ गयी।" सिंह हँस दिया।

"याद भी की तो शिकायत और नाराजगी की बात। अच्छा उस

उच्छृंखलता के लिये क्षमा मांगती हूँ।" हेमा ने हाथ जोड़ दिये।

"उस याद से नाराजगी नहीं, विनोद अनुभव किया।"

"बहुत उदार हो।" हेमा ने पूछ लिया—"अच्छा, वह ह्विस्की खास अवसरों या खास लोगो के लिये ही रखते हैं ?"

सिंह ने प्रश्नात्मक दृष्टि से देखा—"क्या मतलब ? वह भी आफर करूं ?"

हेमा ने उससे नज़र मिलायी—"वह रिलेक्सेशन का अधिक सशक्त उपाय समझा जाता है न ?"

सिंह ने पूछा—"लोगी ?"

"लेट इट बी कम्पलीट एडवेंचर फार मी।" हेमा हंस दी।

सिंह ने संकोच छिपाकर कहा—"ह्विस्की है परन्तु सोडा या बरफ नहीं है। कुछ प्रतीक्षा करो तो प्रबन्ध करूं।"

हेमा ने सिगरेट को ऐशट्रे में झाड़ने के लिये नज़र झुका ली—"उठकर जाओ नहीं। हमारे पिता जी तो ठंडे जल से ही लेते है।"

"घडे का ठंडा जल तो है, लाता हूँ।"

हेमा इस बार कुर्सी से नहीं उठी, छत की ओर आंखे उठाये विचार में डूबी रही।

सिंह ने तिपाई पर से चाय के बर्तन हटा दिये। जग में ठंडा जल, दो गिलास और आलमारी से ह्विस्की की बोतल लाकर तिपाई पर रख दी। हेमा को सम्बोधन किया—"लो।"

हेमा नज़र झुकाये रही—"बनाइये।"

सिंह ने बोतल से ह्विस्की गिलास में उडेलते हुए पूछा—"कितनी ?"

"आप ही जानते हैं।"

सिंह ने अतिथि के प्रति उदारता से एक गिलास मे लगभग दो औंस ह्विस्की डाल दी और पूछा—"जल कितना ?"

"जितना चाहिये।"

सिंह ने कुछ जल भी डालकर गिलास हेमा की ओर बढ़ा दिया।

हेमा ने गिलास तिपाई पर रख कर कहा "अपने लिये बनाइये।"

सिंह ने दूसरे गिलास में एक औंस के लगभग ह्विस्की लेकर जल से आधा गिलास भर लिया।

हेमा ने हाथ बढ़ाकर हल्के रंग का गिलास उठा लिया।

सिंह ने टोका—"तुम्हारे लिये यह गिलास है।"

"मैं तुम्हारा गिलास नही ले सकती ?" हेमा हंस दी।

"जरूर।" सिंह ने दूसरा गिलास ले लिया।

हेमा गिलास ओठों की ओर उठाकर ठिठकी—"कोई विश (कामना) नही करोगे ?"

सिंह ने गिलास उठाया—"शिवम्! हमारी भेंट सुखद हो।"

"धन्यवाद। एवमस्तु।" हेमा ने घूंट भर लिया। दोनो यूनिवर्सिटी के दिनों की बातें याद करने लगे। हेमा ने अपने कई साथियो के विषय मे पूछा और बताया। सिंह के काम के सम्बन्ध मे अनेक प्रश्न करती रही। सिंह उसे बरेली और कानपुर में अपनी ए० एस० पी० की ड्यूटी के समय के छुटपुट रोचक अनुभव सुनाता रहा।

सिंह अभी अपना गिलास आधा ही पी पाया था, हेमा ने अपना गिलास समाप्त कर तिपाई पर रख दिया। सिंह ने अपनी घड़ी की तरफ देखकर कहा—"नौ हो गये, तुम्हे देर तो नहीं हो रही ?"

"मैं तुम्हें बहुत बोर कर रही हूं ?" हेमा ने उसकी ओर दीनता से देखा।

सिंह झेंप गया—"क्या कह रही हो! तुम्हें परेशानी न हो, इस खयाल से बता दिया।"

हेमा बोली—"अभी बहुत समय है, स्टेशन का रास्ता तो दस मिनट का है।"

सिंह ने स्वीकार किया—"हां, स्टेशन दूर नहीं है।" मन ही मन सोचा इस समय रिक्शा खोजने-बुलाने में भी तो आठ-दस मिनट लग सकते हैं। प्रकट मे कहा, "जब उचित समझो मुझे रिक्शा बुलाने के लिये कह देना।" उसने हेमा के गिलास की ओर संकेत किया, "थोड़ी और ?"

"हां, कुछ ले सकती हूं। इससे कुछ थकावट तो मिटी।"

"तो लो न, तुम्हारा गिलास बहुत लाइट भी तो था।"

"जल्दी क्या है, तुम्हारा गिलास खत्म हो जाये।"

सिंह ने हेमा की ह्विस्की लेने की इच्छा मे बाधक न बनने के लिये और शायद इस विचार से भी कि ऐसी विचित्र लडकी को एक ड्रिंक और देकर स्टेशन के लिये चलता करे, अपना गिलास तीन-चार घूंट में समाप्त कर दिया। मन में सोच रहा था—पूर्वापेक्षा अधिक निस्संकोच-निधडक हो गयी है। परन्तु अतिथि के प्रति शील निबाहना भी आवश्यक था।

सिंह ने दूसरी बार ह्विस्की डालने के लिये बोतल उठायी तो हेमा ने हाथ बढ़ा दिया—"लाइये, इस बार मैं बनाऊं।" वह सिंह के गिलास मे कुछ ही ह्विस्की डाल पायी थी कि वह बोल उठा—"बस-बस, काफी है। मेरा पहला ड्रिंक स्ट्रांग था।"

हेमा नशे से गुलाबी आखें उसकी ओर उठाकर बोली—"भरोसा रखो, मेरे हाथ से अनिष्ट नही होगा।"

सिंह मुस्कराकर चुप रह गया। हेमा ने उसके गिलास मे लगभग डेढ़ औंस ह्विस्की डाल दी परन्तु अपने लिये एक औंस से भी कम। सिंह ने एतराज किया—"स्वय तो बहुत कम ली।"

हेमा मुस्करायी—"स्त्रियो और पुरुषों की मात्रा मे कुछ तो फरक होना चाहिये। मेरे लिये तुम्हारी संगति ही काफी है। इतने से असर मालूम पड़ रहा है। मैं तो तुम्हे अपने से बोर न होने देने के लिये संगति दे रही हूँ।"

सिंह ने धन्यवाद दिया—"परन्तु मेरे लिये भी तो तुम्हारी संगति असाधारण स्फूर्ति और आनन्द का अवसर है।"

हेमा ने संतोष के निश्वास से पलके झपकीं—"मन चाहता है, तुम्हारी बात सच मान लूं।"

"सच क्यों नही मानोगी?" सिंह ने पूछा।

हेमा हंस दी—"ऐसा है तो थोड़ी और लो।" उसने बोतल की ओर हाथ बढ़ाया।

"न-न। मेरे लिये इतना बहुत काफी है। तुम्हारी संगति का भी तो प्रभाव है।" सिंह मुस्कराया।

हेमा हंसी—"वाह, एवमस्तु ! पर पी रहे हैं तो कुछ पियो न। रिलेक्स न हुए तो पीने का फायदा। पीते समय भी कम-ज्यादा की फिक्र और दूसरी चिन्तायें रहीं तो पीना क्या हुआ ?"

"मैं बेसुधी के लिये तो नहीं पी रहा हूं।" सिंह हंस दिया, "तुम्हारी संगति के सुख के लिये पूर्णतः चैतन्य रहना चाहता हूँ।"

"धन्य हूं।" हेमा ने सुविधा के लिये सोफा-कुर्सी पर निढाल हो अपनी कोहनी कुर्सी की बाह पर रख कर मुट्ठी पर थोड़ी टिका ली। उसके चेहरे पर और आंखों में गुलाबी झलक आ गयी। माथे से एक लट सामने लटक आयी। उसने लट को सभाला नहीं। निश्वास से पलकें झपकी, "मन चाहता है, तुम्हारी बात सच मान लू।"

"मेरी बात मे सन्देह का कारण ?" सिंह ने भौवे उठाकर आपत्ति की।

"क्यों, तुमने मेरी अवहेलना नही की ?" हेमा के स्वर में शिकायत थी।

"मुझे तो याद नही।" सिंह ने नजर बचाने के लिये गिलास की ओर देखा, "हम लोगो के स्वभाव और प्रकृतियों की भिन्नता के कारण तुम्हे ऐसा लगा होगा।" सिंह ने संकोच से सफाई दी।

"ओॅपोजिट्स अट्रेक्स (परस्पर विरुद्ध प्रकृतियों में भी तो आकर्षण होता है)। वह परस्पर पूरक भी हो सकती हैं।"

"हां, ऐसा भी होता है।" सिंह ने स्वीकार किया।

हेमा एकटक सिंह की ओर देख रही थी, सहसा बोली—"भूख मालूम हो रही है।"

सिंह सकपकाया—"मैंने तभी कहा था, हजरतगंज चला जाये। अब भी किसी रेस्ट्रा मे कुछ मिल जायेगा।"

"इतनी दूर जाने की हिम्मत कहां।" हेमा कुर्सी में और शिथिल हो गयी।

सिंह ने विवशता प्रकट की—"तो फिर कुछ प्रतीक्षा करो। तरकारियं तैयार हैं, आटा गुंधा हुआ है। मैं चपातियां सेकने का यत्न करता हूं। शायद

मैं उतनी अच्छी न बना सके। तुम सहायता नहीं करोगी ?" सिंह ने हेमा की नजर बचाकर अपनी कलाई पर समय देखा, ८-४२ हो रहे थे। मन ही मन सोचा—यह ट्रेन कैसे पकड़ेगी।

"जरूर। मैं सेकूंगी।" हेमा ने किलक कर कहा, "सेंक कर तुम्हे खिलाऊगी, पर समय क्या है ?" उसने अपनी कलाई पर बंधी घडी की ओर नही देखा।

"८-४२ हो रहा है।"

"है !·········ट्रेन पकड़ सकूंगी ?"

"शायद, यदि रिक्शा तुरन्त मिल जाये। इस पर भी काफी कठिनाई से।"

"जाने दो ट्रेन को।" हेमा ने चिन्ता-मुक्ति के भाव से सिर पर हाथ फेर लिया, "सुबह छः बजे भी इलाहाबाद ट्रेन जाती है। पका कर तुम्हें खिलाने का अवसर मुझे फिर कब मिलेगा।" वह सिंह की ओर देखती रही।

"फाइन ! यू आर स्पोर्ट। आभारी होऊंगा।"

"तुम भी स्पोर्ट हो सकोगे ?" हेमा ने सिंह की आखों में देखा।

"क्यो नही ?"

"फाइन।"

सिंह ने सुझाया—"सुबह जा सकती हो तो चिन्ता छोड़ो। अब नौकर आता ही होगा। तब तक कुछ नमकीन बिस्कुट हैं। नमकीन बिस्कुट ह्विस्की के साथ खूब चलते हैं।" उसने बिस्कुट का डिब्बा हेमा के सामने रख दिया—"आराम से खाना। नौकर रिक्शा ले आयेगा। खाने के बाद स्टेशन पहुँचा दूंगा।"

"ठीक है।" हेमा ने स्वीकार किया और वह कुर्सी मे और शिथिल हो गयी।

अतिथि को भोजन की प्रतीक्षा न अखरे इस विचार से सिंह ने सुझाया—"थोड़ी ह्विस्की और लो ?"

"मैं तो आज स्पोर्ट हूँ," हेमा मुस्करायी, "जरूर लूंगी। तुम्हारे लिये सिगरेट लगा दूंगी।" हेमा ने सिगरेट सुलगाकर प्यार भरी चितवन से सिंह की ओर बढ़ा दिया, "जूठा तो नही मानोगे ?"

"वाह !" सिंह ने उठ कर सिगरेट ले लिया—"कृपा के लिये धन्यवाद !"

हेमा ने स्वयं भी सिगरेट लगा लिया—"तब तक कोई इंटरेस्टिंग मामला सुनाओ। लोग कहते हैं, बहुत गहरे मामलों में जांच-पड़ताल कर रहे हो। बड़े-बड़े घाघ लोगों के परखचे उखड़ेंगे। पब्लिक के सामने इन लोगों की करतूतें आयेंगी।"

सिंह घूंट भर कर कुर्सी पर आराम से हो गया। सिगरेट का कश लिया—"हां, काफी पेचीदा मामले है परन्तु ऐसी अप्रिय बातें क्या सुनोगी।"

"पेचीदा बाते ही तो रोचक होती हैं। मैं तो जासूसी उपन्यास खूब पढ़ती हूं।"

सिंह ने स्वीकारा—"मामले पेचीदा तो अवश्य हैं परन्तु पेचीदा इसलिये नहीं हैं कि उनकी योजनायें विशेष साहसपूर्ण अथवा चतुर दांव-पेचो की हैं। हरकतें वे क्षुद्र और कमीनी हैं परन्तु गिरफ्त में न आ सकने के लिये उनके प्रमाण न रहने देने की सावधानी बरती गयी है। ऐसे मामलों का पता तो लगा लिया जा सकता है परन्तु उनके विरुद्ध कानूनी कार्रवाई कठिन होती है। अदालत सूचना और सन्देह को पर्याप्त नहीं मान सकती, ठोस और अकाट्य प्रमाण चाहती है। सबसे बड़ी कठिनाई है कि करप्शन को प्रकट करने अथवा प्रमाणित करने मे सहायता तो कम मिलती है, उस काम में बाधाएं अधिक डाली जाती हैं। इस समय मैं एक मामले मे व्यस्त हूं। व्यक्ति का और जिले का नाम नहीं बताऊंगा। व्यक्ति बहुत तेज है। डायरेक्ट पी० पी० एस० सेलेक्शन में लिया गया था। एण्ड ही इज वेरी वेल कनेक्टेड।"

हेमा की नशे से गुलाबी आंखें ध्यान से सुनने के लिये सिकुड़ गयीं।

सिंह ने बताया—"इस डी-वाई० एस० पी० ने कई रिश्वते ली हैं। एक कत्ल के मामले मे अपनी जेब खूब गरम करके उसने अपराधी को बचा दिया है। गुप्त जांच से उसकी करतूतों के जो समाचार मिले हैं, विश्वास योग्य जान पड़ते हैं। परन्तु कोर्ट के सामने पेश करने योग्य गवाही जुटाना कठिन हो रहा है। क्योंकि रिश्वते उसने अच्छी पोजीशन के लोगो को दलाल बनाकर ली हैं कुछ बड़े अफसर इस केस को डिसपोज़ कर देना चाहते थे। पर मैंने काफी

जाच-पड़ताल करके सबूत लगभग पूरा कर दिया है। ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध कानूनी कार्रवाई जरूर होनी चाहिये।"

हेमा ने गर्दन हिलायी मानो उसे ऐसी उलझनों से कोई प्रयोजन न हो। सिंह की ओर देखा—"तुम मामलों से वैयक्तिक लगाव न होने पर भी उनमे इतना कैसे उलझ जाते हो कि उनके लिये अपने को खपाये दे रहे हो ?" उसके स्वर में आत्मीयता का आग्रह आ गया।

"मैं उलझ कैसे गया हूँ ?" सिंह ने निराकरण किया, "मैं यह काम बदले की भावना से नही कर रहा हूँ। तुम जानती हो, मुझे मामले से कोई वैयक्तिक लगाव नही है। मैं किसी को हानि नही पहुँचाना चाहता। राइट जस्ट ऐटीट्यूड लेना चाहता हूँ। वह मेरी ड्यूटी है और मेरे अन्तस-कान्शेन्स का सतोष है।"

हेमा का स्वर मृदु हो गया—"तुम जिधर झुक जाते हो, अन्त तक पहुँचते हो।"

हेमा की बात की व्यंजना पकड़ पाने के लिये सिंह ने उससे नजर बचाकर लम्बा कश लिया और गिलास से एक घूंट लेकर पूछा—"इसमे किसी और झुकाव या अन्त तक पहुँचने की सनक क्या है ? यह तो केवल कर्त्तव्य मात्र और औचित्य का विचार है।"

हेमा ने स्वीकार किया—"यही मेरा अभिप्राय है कि तुम लगाव के बिना कर्त्तव्य और औचित्य के विचार से ही इंटरेस्ट ले सकते हो। तुम्हारा यह पुराना स्वभाव है। यूनिवर्सिटी मे भी यही रवैया था। याद है, धीर की स्पोर्ट्स-सेक्रेटरीशिप के मामले मे लोगो ने वोट गिनने में धाधली की थी तो तुमने इतना एजीटेशन किया कि चुनाव दुबारा करना पड़ा। हालांकि तुम्हें न धीर से कुछ मतलब था न स्पोर्ट्स से ही कोई खास लगाव।" उसने गहरी सांस ली, "तुम चाहे जितनी अवहेलना करते रहे हो, मैं तो हमेशा तुम्हारी रिस्पेक्ट करती रही हूँ। ट्रेन में ही सोच लिया था; लखनऊ मे तीन घटे मिलेगे तो दर्शन के लिये यत्न करूंगी। आशंका यही थी कि सध्या तुम घर पर हो, या न हो। भाग्य ने साथ दिया, दिया न ?" उसने सिंह की आंखों में उत्सुकता से देखा।

सिंह के चेहरे पर संकोच की लाली आ गयी—"धन्यवाद, यह तो मेरा ही

सौभाग्य है।" सिंह को अन्य कुछ कहने को न सूझा। उसने हेमा के गिलास की ओर संकेत किया, "थोड़ा और ?"

"जैसे चाहो, मैं तो आज स्पोर्ट के मूड में हूँ।" हेमा ने निश्चिन्त होने का संकेत किया।

सिंह को लगा वह काफी ह्विस्की ले चुका था परन्तु स्वयं ही प्रस्ताव किया था, बोला—"थोड़ा-थोड़ा और सही।"

हेमा मुस्करा दी—"जैसे चाहो। तुम्हारे हाथों में हूँ तो क्या आशंका।"

"धन्यवाद !" सिंह ने झेंप कर कहा और खयाल आया—"कुछ ज्यादा हो रहा है।"

उसने दोनों गिलासों में एक-एक औंस से भी कम डाली—"मेरे खयाल में पर्याप्त होगा।"

हेमा ने गिलास उठाकर कहा—"पुनः भेंट की आशा से।"

सिंह ने स्वीकार किया—"धन्यवाद। अवश्य !"

"परस्पर विश्वास और सद्भावना से।" हेमा ने जोड़ा।

"निश्चय !" सिंह ने स्वीकार किया।

नौकर ने बैठक में झांक कर अपने आ जाने की सूचना दी। सिंह ने नौकर के चेहरे पर विस्मय का भाव भांपा। उसकी उपेक्षा करके बोला—"देखते हो क्या बज रहा है। तुरन्त दो थाली लगाओ। बहुत जल्दी करो। फिर तुम्हें रिक्शा लानी है। बीबी जी खाना खाकर स्टेशन जायेंगी।"

नौकर ने दस मिनट में ही परौंठे सेक कर सिंह और हेमा के लिये थालियां लगा दीं। सिंह और हेमा खाते समय भी याद कर-कर के यूनिवर्सिटी के दिनों की चर्चा करते रहे।

खाना खाकर दोनों फिर बैठक में आ गये। सिंह ने पूछा—"मैं विशन को रिक्शा लाने के लिये कह दूं। खाना वह लौट कर खा लेगा। वरना बहुत देर हो जायेगी, ग्यारह हो रहे हैं।"

हेमा सोफा-कुर्सी पर बैठ गयी थी। चेहरे पर लटक आयी लटों को समेट कर बोली—"सुनो ! बहुत थकान और खाने के बाद सुस्ती भी लग रही है।

ड्रिंक भी लिया है। इस समय जाने को मन नहीं चाहता। स्टेशन पर अकेली क्या करूंगी ! सुबह जल्दी उठकर स्टेशन पहुँच जाऊंगी। गाड़ी तो सुबह छः बजे ही मिलेगी। तुम्हारे यहां क्या मेरे लिये जगह नहीं है ?" वह मुस्करायी।

"जगह बहुत है परन्तु घर में अकेला हूँ।" सिंह के स्वर मे चेतावनी थी।

"क्यों, मुझ से डर लगता है !" हेमा हंस दी।

सिंह भी हंसा—"डर मुझे क्या लगेगा। लेकिन बता दिया।"

हेमा ने कहा—"यह तो पहले ही बता दिया था। इतनी देर भी तो मेरे साथ अकेले ही थे और डरे नहीं ?"

"ठीक है।" सिंह ने कहा, "चाहे ऊपर अम्मा के कमरे में सो जाओ या मेरे बेड-रूम मे।"

"तुम्हारे बेड-रूम मे ! डरोगे नहीं ?"

सिंह हंसा—"मैं तो गरमी की वजह से ऊपर छत पर खुली हवा मे सोता हूं। हालांकि बेड-रूम में पंखा है। विशन बिस्तर लगा देगा। अम्मा के कमरे मे टेबल-फैन है। परन्तु तुम्हें बदलने के लिये कुछ कपड़े-वपडे तो चाहिये। अम्मा और पप्पा अपनी अलमारियों की चाभियां अपने साथ ले गयी हैं।"

"कपडों के लिये परवाह न करो।" हेमा ने कहा, "सब हो जायेगा।" और कुछ सोच कर बोली, "मैं अम्मा जी के कमरे में ही सो जाऊंगी। बिस्तर के लिये चिन्ता न करो, मुझे जीना या कमरा दिखा देना। अभी बैठो, इतनी उतावली क्या है !"

"मुझे उतावली नहीं परन्तु तुम थकी हुई हो। अब आराम करो। सुबह तुम्हें जल्दी उठना है।" सिंह उठ खड़ा हुआ।

सिंह ने विशन को दूसरा काम छोड़ कर मेहमान के लिये बिस्तर लगा देने के लिये आदेश दिया। टाइमपीस में सुबह चार बजे का एलार्म लगा दिया। विशन को ताकीद कर दी कि टाइमपीस सिरहाने रख कर सोये और सुबह एकदम चाय बना दे। हेमा को जीने से ले जाकर ऊपर का कमरा दिखला दिया और बोला—"सुबह जब तक तुम चाय पियोगी, विशन रिक्शा ले आयेगा। गुड नाइट !" वह रात के कपड़े बदलने के लिये अपने बेड-रूम मे चला गया।

सिंह स्लीपिंग सूट पहन कर छत पर लगे मसहरीदार पलंग पर जाने के लिये ज़ीना चढ़ रहा था तो हेमा कमरे का दरवाजा बन्द कर चुकी थी।

सिंह छत पर जाकर मसहरी मे लेट गया। रात भीग कर मई के अन्त की गरम हवा शीतल हो चुकी थी। कृष्णपक्ष की सप्तमी का लगभग आधा चांद क्षितिज के ऊपर झांकने लगा था। सिंह काफी ह्विस्की पिये था परन्तु उसे नींद न आयी। संध्या के अनुभव की विचित्रता पर वह मन ही मन मुस्करा रहा था—विचित्र लड़की है। तब भी निस्संकोच और कुछ एग्रेसिव थी। निस्संकोच क्या निधड़क ही कहना चाहिये। वैसा ही व्यवहार अब भी है बल्कि कुछ अधिक ही। वेरी कॉन्फीडेंट। इंटलीजेंट भी पर पाठ्य विषयों मे रुचि बेचारी को नहीं थी। सिंह को याद आने लगा—हेमा की हाज़िरजवाबी और निधड़क व्यवहार के कारण वह एम० ए० के प्रथम वर्ष में उसके प्रति आकर्षण अनुभव करने लगा था। हेमा भी समझ गयी थी। हेमा की ओर से उसे न पूर्ण उपेक्षा न विशेष प्रोत्साहन ही मिला था। केवल उतना ही रिस्पांस जितना वह हेमा के व्यवहार मे अन्य दो-तीन युवकों के प्रति भी देखता था। सिंह ने ईर्ष्या मिली भावना से सोच लिया था—लड़की खिलाड़ी है।

वह मामला अधिक आगे न बढ़ा। सिंह ने स्वयं को समझा लिया था—यह ठीक नहीं। दूर देहात मे अपना घर-बार छोड़ कर यूनिवर्सिटी मे वह ऐसे खिलवाड़ के लिये नहीं आया है। उसने अपना व्यवहार बदल लिया था।

सिंह का व्यवहार बदल जाने पर हेमा ने रस-प्रसंग जारी रखने के लिये सिंह को कुछ संकेत किये थे। सिंह ने उन्हें अनदेखा कर दिया था। हेमा इस अवहेलना से चिढ़ गयी थी। उसने सिंह से बदला लेने के लिये चार सहेलियों को साथ ले आजाद पार्क मे उसे परेशान कर दिया था।

सिंह को खयाल आया—हेमा अभी तक अविवाहित है। उसकी आयु मुझ से कुछ ही कम होगी। दो वर्ष ही जूनियर थी। अब छब्बीस-सत्ताइस की होगी। इससे अधिक आयु के बाद विवाह, खासकर लड़कियों का, कठिन ही हो जाता है। इससे लेट विवाह का फायदा भी क्या। सोचा—निधड़क है, अपने पर भरोसा है, शायद विवाह का विचार नहीं है। ख्याल आया, सम्बन्धी में

विवाह के लिये वर्षों से चिन्तित हैं। परन्तु ठीक से पांव जमने के पूर्व विवाह का झगडा कैसे सहेड लेता। अब विवाह के लिये अनुमति दे ही दी है। कल्पना करने लगा—विवाह होगा किसी ऐसी नवयुवती से, जिससे अब तक सर्वथा अपरिचित हूँ। विवाह की प्रथा सम्पन्न हो जाने पर अपरिचित नवयुवती पूर्णत: तन-मन से मेरी हो जायेगी, वर्तमान और भविष्य की अभिन्न संगिनी बन जायेगी। अभी कल्पना भी नहीं की जा सकती—वह कौन या कैसी होगी? सब कुछ चांस पर निर्भर करेगा। वह बिलकुल डल भी हो सकती है, हेमा की भांति चुलबुली, हाजिर जवाब और निधड़क भी। हेमा जैसी आत्मनिर्भर लड़की को अभिभावक जिस किसी को सौंप दें तो क्या ऐसी लड़की भी अपने व्यक्तित्व को मिटाकर आत्मसमर्पण कर सकेगी? कठिन ही है। पर हेमा जैसी लड़कियां कम ही होती हैं।'''''वह लडकी-लड़का, नारी अथवा पुरुष ही क्या जिसका अपना अस्तित्व या व्यक्तित्व ही न हो। हेमा इज़ नाट बैड गर्ल, नाट बैड एट हार्ट।''''केवल एक ही बात निश्चित है, मेरी भावी पत्नी एक नवयुवती, लड़की, नारी होगी। पुरुष के लिये पत्नी का नारी होना ही मूलभूत, अनुपेक्षणीय और अनिवार्य आवश्यकता है। या पुरुष के लिये नारी अनुपेक्षणीय और अनिवार्य रूप से आवश्यक है। वैसे ही नारी के लिये पुरुष अनिवार्य रूप से आवश्यक। परन्तु बेचारी हेमा''''। उसे झपकी आने लगी।

सिंह को झपकी आयी ही थी कि उसे छत के फर्श पर पदचाप का भान हुआ। उसने चौंक कर पुकार लिया—"कौन?" आंखे खुलने पर मसहरी की जाली में से एक आकृति दिखलायी दी। उसने फिर पूछा, "कौन!"

उत्तर मिला—"आई एम सॉरी। तुम्हारी नींद खराब की।"

सिंह ने मसहरी की जाली से झांका—चांदनी मे देखा, छत पर हेमा थी। शरीर पर केवल पेटीकोट और अंगिया। सोने से पूर्व साड़ी और ब्लाउज बिस्तर मे मसल जाने से बचाने के लिये उतार दिये थे। वह वैसे ही उठकर छत पर चली आयी थी।

हेमा संकोच से बोली—"नही मालूम था, तुम इस छत पर होगे। ऐसे ही आ गयी। नाराज़ न होना। नीचे तो बहुत गरमी है। वहां नींद आना मुश्किल

है। यह फर्श कितना अच्छा, ठंडा लग रहा है। यहीं फर्श पर लेट जाऊंगी।"

सिंह मसहरी में उठकर बोला—"ऐसी बात है तो तुम यह पलंग ले लो। मैं नीचे जा रहा हूं।"

"मैं तुम्हे परेशान करने के लिये तो नही आयी।" हेमा ने धीमे से कहा और नीचे फर्श पर बैठ गयी।

सिंह पलंग से उठने के लिये मसहरी हटाता हुआ बोला—"फर्श पर न बैठो। यहां आ जाओ। मैं नीचे जा रहा हूं।"

हेमा फर्श से उठ कर सिंह के पैताने बैठ गयी। सिंह पलंग से उठ सकने के लिये बिस्तर के किनारों के नीचे दबी मसहरी को छुड़ा रहा था।

हेमा ने कहा—"तुम लेटे रहो। मुझे नींद नहीं आ रही है, मैं बैठी रहूंगी।"

सिंह ने कहा—"नही, नही, तुम लेटो।"

"मैं तुम्हें उठाकर नही लेटूंगी। यहां दोनों के लिये जगह नही है?" हेमा हंस दी, "तुमने तो कहा था""बहुत जगह है।"

हेमा के प्रस्ताव से सिंह को रोमांच हो आया "''''क्या कह रही हो!" युवती के निर्लोभ कोमल शरीर के अति नैकट्य, उसके शरीर की चुम्बक-ऊष्मा और भीनी सेंट में मिली नारी स्वेद की मादक गंध से उसका सिर घूमने लगा।

हेमा ने सिंह को उठने न देने के लिये हाथ उसके कन्धे पर रख, मुख उसके सामने कर और आंखें उसकी आंखो में डाल अधीर स्वर मे पूछा—"मैं तुम्हे इतनी बुरी लगती हूं? मैं तो इतने वर्ष बाद भी तुम्हें नहीं भूल सकी। अवसर पाकर दौड़ी चली आयी। सुबह मुझे चले ही जाना है। कुछ देर और तुम्हारी संगति पा लूं। तुम सो जाओ, यहां बैठ कर बस तुम्हें देखती रहूंगी।"

सिंह के मस्तिष्क मे कौंध गया—इसके मन में तब से मेरे लिये खयाल बना हुआ है! बेचारी""हृदय की गति बढ़ गयी।

हेमा ने सिंह की बांह को सहला कर अनुरोध किया—"तुम आराम से लेट जाओ," और उसे ठेल कर लिटा दिया। स्वयं कोहनी सिंह के सिर के समीप तकिये पर टेक, उसके मुख पर झुक कर मुस्कान से आंखें मिलाये रही।

सिंह ने भरे से कण्ठ से पूछ लिया—"क्या देख रही हो?"

हेमा ने भी गहरे स्वर में कहा—"तुम कितने अच्छे हो। परन्तु मैं तुम्हें अच्छी नहीं लगती।"

"ऐसी बात नहीं है।"

हेमा सिंह के केशों में अंगुलियां डाल कर सहलाने लगी और दाहिना हाथ सिंह के सीने पर रख दिया।

सिंह आत्मनियंत्रण की व्याकुलता अनुभव कर रहा था। उसने धीरे से कहा—"हेमा! थैंक्यू वेरी मच। तुम यहां लेटो, मुझे नीचे जाने दो।"

"क्यों डार्लिंग?"

"मुझे असुविधा हो रही है।"

"क्यों, मुझ से इतनी विरक्ति है?"

"नहीं, ऐसी अवस्था में आत्मनियंत्रण सम्भव नहीं।" सिंह का स्वर भर्रा गया।

हेमा ने उसे चूम लिया—"डार्लिंग।"

सिंह ने अपने सीने पर रखा हेमा का हाथ अपने हाथ मे दबाकर चेतावनी के लिये कहा—"डियर, कुछ भी हो जा सकता है।"

हेमा ने गहरा निश्वास लिया—"कुछ परवाह नहीं।" उसने कोहनी की टेक हटा अपना सिर तकिये पर रख लिया।

×　　　　×　　　　×

हेमा ने सिंह का सिर सहला कर कहा—"प्यारे, अब आराम से सो जाओ। सुबह बात करेंगे।" वह नीचे जाने के लिये उठ रही थी। सिंह ने उसे फिर बांहों में समेट कर चूम लिया—"अच्छा मेरी जान।"

हेमा के नीचे चले जाने पर सिंह को तुरन्त नींद नहीं आ गयी। हल्केपन और माधुर्य की एक पूर्व अपरिचित अनुभूति से अगड़ाई ले विस्मय से सोचता रहा""संध्या भर में क्या से क्या हो गया!""हेमा पांच वर्ष से मुझे आत्म-समर्पण किये बैठी थी। प्रकट में कैसी हंसोड़ और बेपरवाह। वास्तव में इतनी गम्भीर और गहरी। वह जीत गयी""। सिंह को अपनी हार के लिये मधुर गर्व अनुभव हुआ। मन में हेमा के लिये स्नेह उमड़ आया। इच्छा हुई, नीचे उसके

पास चला जाये, अब तो उसे अधिकार था। मन को रोका—नहीं! उसे सुबह यात्रा के लिये जल्दी उठना है। सोचने लगा—विवाह मुझे करना है। अनजानी, अपरिचित युवती से अपना जीवन क्यों बांध लूं? विवाह तो हो गया....। विवाह के लिये सबसे आवश्यक बात तो नर-नारी का परस्पर स्नेहमय आकर्षण ही है। मैं अनजाने में इतना गम्भीर प्रेम सहेजे बैठा था।....सिंह को नींद आ गयी।

बिशन ने प्रातः सवा चार बजे छत पर सिंह की मसहरी के पास जाकर पुकारा—"साहब, बैठक में चाय रख दी है, बीबी जी को भी बोल दिया। इस समय रिक्शा दूर मिलेगा। लेने जाता हूँ।"

सिंह को नींद टूटने की अगड़ाई के साथ ही रात का अनुभव याद आ गया और लगा—रात भर में वह बहुत कुछ बदल गया, कुछ बढ़ गया था। वह तुरन्त उठकर नीचे चला गया। रात के कपड़े बदलते-बदलते सोच रहा था—हेमा से अभी बात कर लूं....।

सिंह बैठक में आया तो हेमा तैयार बैठी थी। उससे नजर मिलने पर सिंह आत्मीयता से मुस्कराया—"डार्लिंग, इतनी जल्दी तैयार हो गयी।"

हेमा प्यार से मुस्करायी—"जाना जो है। तुम्हें नींद आयी ठीक से?"

सिंह ने गहरी सांस से सन्तोष प्रकट किया—"बहुत गहरी। एक ही करवट सोया रहा।"

सिंह ने हेमा के सम्मुख तिपाई पर रखी हुई चाय की ओर कुर्सी खींच ली। वह अपनी बात आरम्भ करने को ही था कि हेमा बोल उठी—"मुझे तुम से एक बहुत ही जरूरी अनुरोध करना है और तुम्हें मेरा काम करना ही होगा।"

"जरूर डार्लिंग!" सिंह ने स्वीकार किया—"मुझे भी तुम से बहुत जरूरी बात करनी है। तुम्हें भी वह काम करना ही होगा।" उसने हेमा के शब्द दोहराये।

हेमा ने गद्‌गद हो पूछा—"क्या? पहले तुम ही बताओ।"

"तुम इलाहाबाद अपने घर, माता-पिता के पास जा रही हो न?"

"क्यों, क्या मतलब?" हेमा ने हामी भरी।

"जाते ही हमारे विवाह के सम्बन्ध में उन लोगों से सलाह करके, समय निश्चय करके मुझे सूचना दे दो। तीन मास, यानी अगस्त के पश्चात जो भी समय तुम्हारे या उनके लिये सुविधा का हो, निश्चित कर सकती हो। तुमसे सूचना पाकर मैं अपने भाई और मां को लिख दूंगा।"

"ओह डार्लिंग!" हेमा का कण्ठ प्यार के आवेग से रुंध गया। आंचल का कोना मुट्ठी मे दबाकर क्षीण कातर स्वर से बोली—"मैं बिना ब्याह के तुम्हारी रही, तुम्हारी हूँ, तुम्हारी रहूँगी। तीन-चार दिन में लौटूंगी तो फिर यहा होकर जाऊंगी।" हेमा तरल दृष्टि से सिंह की आंखो में देखती रही।

"वह तो ठीक है प्यारी," सिंह ने कहा, "परन्तु हम एक हो गये हैं तो दूर क्यों रहें? यह काम सामाजिक रूप से भी संगत हो जाना आवश्यक है। जितनी जल्दी हो जाये, ठीक होगा; नहीं क्या?"

"डियर, तब क्यों रूठे रहे?" हेमा निश्वास से बोली—"तीन बरस पहले तक क्यों नहीं सोचा? अब तो बंध चुकी हूँ। विवाह के नाते परायी होकर भी तुम्हारा प्यार मन से दूर नही कर सकी। तुम इतनी तपस्या से पिघले, जब मैं बेबस हो चुकी! पर मैं तुम्हारी ही हूँ।"

सिंह के ओठ खुले रह गये और हेमा को एकटक देखती आंखें फैल गयी। मुख से शब्द न निकला।

हेमा ने आंचल से आंखे पोंछ लीं—"अब मैं हेमा माथुर नहीं, हेमा वर्मा हूँ।"

सिंह विस्मय से सांस रोके उसकी ओर देखता रहा।

हेमा ने कण्ठ का अवरोध निगल कर कहा—"विवाह तीन वर्ष पूर्व हो चुका है। मेरी एक बच्ची है। कल तुमने एक डी-वाई० एस० पी० का मामला बताया था। तुमने उसका नाम नहीं बताया। उसका नाम आर० सी वर्मा है। वही मेरे हस्बेंड हैं। डियर, हम लोग विकट जाल मे फंस गये हैं। हमारा सौभाग्य यही है कि मामला तुम्हारे हाथ में है। सच मानो, मिस्टर वर्मा ने जिन लोगों को मनचाही करने से इनकार किया उन्ही लोगों से मिलकर यह सब प्रपंच खड़ा किया है। इस समय मेरा और उनका जोवन, इज्जत और भविष्य

तुम्हारे हाथों मे है। तुम्हीं हमे बचा सकते हो। मेरे लिये तुम्हें यह करना ही होगा नही तो मेरे हस्बैंड का, मेरा, मेरी लड़की का जीवन और मेरे पति पर निर्भर कई लोगों के जीवन बरबाद हो जायेंगे।"

सिंह नजर झुकाये मौन था। सिर पर सहसा आ पड़े विस्मय और चिन्ता के बोझ को सभालने के लिये उसने कोहनी कुर्सी के हत्थे पर टेक हाथ से कनपटी को सहारा दे लिया। सहसा उसके मस्तिष्क मे कौंध गया—'हेमा ने यह एडवेंचर अपने पति की अनुमति से ही तो नही किया!' रिश्वत का अभ्यासी, रिश्वत चाहे जिस रूप में हो, रिश्वत को सभी समस्याओ का उपाय समझ सकता है। तभी यह इतनी निश्शक और गाड़ी छूट जाने से बेपरवाह रही। ऐसे स्त्री-पुरुषो से सब कुछ सम्भव है। ह्वाट एक्सपेरियस! वह कुछ घण्टे पूर्व के अपने अनुभव की विडम्बना पर आश्चर्य कर रहा था। रात उसने मधुर कल्पना से, कुछ ही क्षणो मे अपने सौभाग्य का महल खड़ा कर लिया था। अब यथार्थ ने उसे झकझोर कर काल्पनिक महल को धूलि के बवंडर का रूप दे दिया था। जिसे वह अपने सौभाग्य का महल मान बैठा था वह उसे छलने के लिये मरीचिका मात्र थी—घिनौने, काले, विषैले, दुर्गन्धित पोखर मे सुन्दर बिम्ब का भ्रम मात्र। सम्मुख बैठी हेमा उसे सम्मोहन के छल के लिये अठखेलियां करती विष-धर सांपिन सी लग रही थी—कैसे कुछ घण्टे पूर्व उसने अपने आपको उस सांपिन के आलिंगन में समर्पित कर दिया था। रात्रि की हेमा में और सामने बैठी हेमा मे उसे शारीरिक साम्य के बावजूद अपरिमेय भेद अनुभव हो रहा था।

हेमा ने अपने बटुए से रूमाल निकाल कर पलके पोंछ ली और अपने अनुरोध के उत्तर की प्रतीक्षा मे तिपाई की ओर झुक कर चाय बनाने लगी।

सिंह कुर्सी पर सीधा हो गया। बांहे सीने पर बांध ली। हेमा से दृष्टि बचाये रखने के लिये आंखे चाय के प्यालो की ओर झुकाये था।

हेमा ने उसका मौन तोड़ने के लिये पूछ लिया—"चीनी एक चम्मच डालूं या दो?"

"तुम लो, अभी मुझे नहीं चाहिये।" सिंह की दृष्टि झुकी रही।

"क्यों, लो न!" हेमा ने प्यार से उसकी ओर देखा।

"मुझे इतनी जल्दी लेने की आदत नहीं है।" सिंह आंखें झुकाये रहा।

"तुम्हीं ने तो बनवायी है।" हेमा उसके स्वर मे कुछ रुखाई अनुभव कर बोली।

"तुम्हारे लिये।"

"अच्छा, हमारे कहने से ले लो, दोनों साथ-साथ पियेंगे।" हेमा मुस्करायी।

"मैं नाश्ते के समय ही लेता हूँ।" सिंह की दृष्टि झुकी रही।

"डियर, नाराज हो गये क्या?" हेमा कातर स्वर से बोली, "तुम बताओ, ऐसी परिस्थिति में मैं अन्य किसका विश्वास और भरोसा कर सकती हूँ।"

सिंह की आंखे अब भी प्यालों की ओर थीं परन्तु माथे पर हलके तेवर आ गये—"क्या मतलब ?"

सिंह का स्वर कुछ अधिक रूखा जान पड़ा। हेमा ध्यान से उसके चेहरे की ओर देख आतुरता से बोली—"डियर, मैंने तुम्हें सब कुछ बता दिया है। तुम्हे मिस्टर वर्मा को मुसीबत से बचाना है।"

सिंह नजर झुकाये ही बोला—"तुम कहती हो तुम्हारे पति के विरुद्ध कुछ लोगों ने फरेब से जाल रचा है। किसी के विरुद्ध जाल रच देने या मिथ्या आरोप लगा देने से कुछ नहीं हो सकता। हमारे महकमे का तो काम ही है कि आरोपो के सम्बन्ध में तथ्यों और सच्चाई का पता लगाया जाये। इस विषय मे मुझ से कुछ कहने की जरूरत नहीं है।"

"क्या कह रहे हो डियर!" हेमा ने पल भर सिंह की ओर देखा। उसके कण्ठ में भी आंसू थे। फिर रूमाल से आंखे पोंछ कर बोली—"डियर, अपना सकट तुम्हे बताये बिना कैसे रह सकती हूँ। मुझे तुम्हारी सहायता की जरूरत है। हमें तुम ही बचा सकते हो।"

सिंह की नजर अब भी फर्श की ओर थी। हेमा उससे आश्वासन के लिये एकटक उसकी ओर देख रही थी। कुछ पल प्रतीक्षा कर बोली—"डियर, तुम पर भरोसा करूंगी।"

सिंह कुर्सी पर हेमा की ओर घूम गया और बांहें सीने पर कस लीं। सामने देख कर बोला—"मैं न किसी को बचा सकता हूँ न किसी को फसा सकता हूँ।

.रा काम केवल तथ्यों का संग्रह कर, विचार के लिये सीनियर्स के सम्मुख स्तुत कर देना है निर्णय उन लोगो के हाथ में है। या अदालत के हाथ में।"

हेमा दीर्घ निश्वास से बोली—"क्या कह रहे हो डियर। इस मामले में बुनियादी चीज तो तुम्हारे ही हाथ मे है। असल बात तो यही है कि किन तथ्यो को किस रूप में पेश किया जाता है। सब जानते हैं, महकमे के लोग तथ्यो को जैसा चाहे बना सकते हैं, जैसे चाहें पेश कर सकते हैं। मैं तुम से सहायता मांग रही हूँ।"

सिंह ने इनकार में गर्दन हिलायी—"तथ्य बनाने का मतलब तो जालसाजी है। एक भद्र व्यक्ति का अन्तस-कांशेन्स कैसे गवारा कर सकता है किसी व्यक्ति को नुकसान पहुँचाने के लिये झूठे तथ्य गढ़ कर मिथ्या आरोप लगा दिये जाये। आखिर अदालत भी तो है जो सन्देह की गुंजायश में आरोप को सही नहीं मान सकती। क्या अदालत भी जालसाजी में सहयोग दे देगी। यह व्यर्थ की बाते हैं।"

हेमा ने फिर रूमाल से पलकें पोंछी—"डियर, कैसी बातें कर रहे हो। मैं न्याय और तथ्यों के बारे मे तकाजा नही कर रही हूँ। मैं तुमसे सहायता-रक्षा माग रही हूँ। जीवन मे केवल एक बात तुमसे कह रही हूँ। अपने प्यार के लिये और कुछ नही मागूंगी। विश्वास रखो, जिन्दगी भर तुम्हारे संकेत की दासी और तुम्हारी रहूँगी। डियर, मेरा काम तुम्हें करना होगा। इस समय हमारा जीवन तुम्हारे आश्वासन और परामर्श पर निर्भर है।"

"मुझे नही मालूम मैं इस विषय मे क्या कर सकता हूँ।" सिंह ने सूनी दीवार की ओर देखा।

"हेमा ने उत्साह से उत्तर दिया—"मैं वही चाहती हूँ जो तुम कर सकते हो और जानती हूँ मुझे जो कुछ चाहिये तुम सब कर सकते हो। मुझे केवल तुम्हारा आश्वासन और परामर्श चाहिये। मेरा केवल यही अनुरोध है और तुम्हारे सब आदेश और इच्छाएं मेरे सिर-आंखों पर होंगी।"

सिंह ने हेमा की ओर देखा—"आल राइट, मेरा परामर्श मानोगी ?"

हेमा सांत्वना के उच्छ्वास से बोली—"जरूर डियर। तुम्हे स्थिति बता दा है। तुम्हारे कदमों में हूँ। तुम मुझ से जो कुछ, जैसी भी आशा करोगे, जान

पर जोखिम झेल कर भी पूरी करूंगी।"

सिंह ने समझ लिया—यह पति की अभिसन्धि से मुझे वश में करने के प्रयोजन से ही आयी है, बोला—"सुनो, सबसे उचित बात यह है कि मिस्टर वर्मा से अपनी स्थिति का जो कुछ अनुचित प्रयोग हुआ है, वे उसे स्वीकार कर लें और जिन लोगों ने क्षुद्र स्वार्थ के लिये, समाज के न्याय और सुरक्षा की व्यवस्था को धोखा देने के लिए षड्यन्त्र में उन्हे साधन बनाया है या उन्हें सहयोग दिया है उन्हें भी प्रकट कर दें। मैं इस बात के लिये पूर्णतः चौकस रहूंगा कि मिस्टर वर्मा के साथ अन्याय न हो। उन पर कोई मिथ्या आरोप न लग सके या उन्हें हानि पहुँचाने के लिये तथ्यों को तोड़ा-मरोड़ा न जाये।"

हेमा का चेहरा पत्थर की भांति स्तब्ध हो गया और नम गुलाबी आंखें अपलक सिंह को देखती रहीं। बोल सकने के लिये दीर्घ निश्वास लिया—"डियर, कह रही हूँ, मैं तथ्यों और न्याय के सम्बन्ध में तकरार करने नहीं आयी हूँ, तुमसे रक्षा और सहायता मांग रही हूँ।"

सिंह ने तटस्थता के भाव से कहा—"मैंने भी स्पष्ट कह दिया है कि मैं केवल न्याय के लिये तथ्यों के संग्रह और निरूपण मे सहायक हो सकता हूँ। केवल तथ्यों को प्रकट करने और स्वीकार करने का ही परामर्श दे सकता हूँ।"

हेमा का चेहरा अधिक पीला और नेत्र अधिक गुलाबी हो गये। अवरुद्ध कण्ठ से पूछा—"तुम्हारा परामर्श है कि तुम लोग मिस्टर वर्मा के लिये जो फंदा तैयार कर रहे हो, वे उसमें अपना गला स्वयं फंसा दें। यह हमारी सहायता का आश्वासन है। तुम पर मेरे प्रेम और विश्वास का यही बदला, यही मूल्य है।"

सिंह ने क्षण भर के लिये पलकें झपक ओंठ काट लिये फिर सीधे हेमा की आंखों मे देखा—"सच कहना, क्या तुमने इसी प्रयोजन या आशा से मेरे प्रति अदम्य प्रेम का विश्वास दिलाकर प्रेम का नाटक किया था?"

हेमा अप्रत्याशित प्रश्न के आघात से चौंक कर आधा क्षण सिंह की ओर मौन देखती रह गयी फिर संभली—"क्या कह रहे हो डियर, मेरा ऐसा अपमान करोगे।"

"हरगिज नहीं" सिंह ने मानो आश्वासन पाया। ओंठ हल्की मुस्कान में

थिरक गये—"मैं ऐसा सन्देह कतई नहीं करना चाहता कि तुम्हारी भावना और आचरण में अदम्य प्रेम के उन्मेष के अतिरिक्त कोई अन्य प्रयोजन होगा। तुम्हारे शब्दों—प्रेम और विश्वास का बदला और मूल्य से मुझे विस्मय हुआ। प्रेम के बदले या मूल्य की बात कह कर अपने प्रेमाचरण को कुत्सित व्यापार नहीं बना देना चाहिये। खैर, शब्दों की बात जाने दो। मुझे संतोष है कि तुम नाराज नहीं हो।"

"हाय मैं तुमसे नाराज कैसे हो सकती हूँ डियर!" हेमा का स्वर आर्द्र हो गया, "परन्तु क्या प्रेम में परस्पर सहायता का अधिकार नहीं होता।"

"सहायता का अधिकार जरूर होना चाहिये।" सिंह ने स्वीकार किया—"यदि वह स्वतः हृदय की उमंग या प्रेमपात्र के प्रति कर्त्तव्य के विचार से हो। वह प्रेरणा अन्तस-कान्शेस से उद्भूत हो। बदले और मूल्य की मांग नहीं होनी चाहिये?"

"शब्दों पर न जाओ डियर" हेमा ने क्षमा मांगी, "मैं तो प्यार के अधिकार से सहायता मांग रही हूँ। तुम्हें वर्मा को बचाना है। वर्ना हमारा सर्वनाश हो जायेगा।"

"तुम फिर वही बात कह रही हो," सिंह का स्वर कुछ कड़ा हो गया, "तुम प्रेम के नाम पर मुझसे न्याय और व्यवस्था को धोखा देने का, मेरे अन्तस-कान्शेंस के हनन का अनुरोध कर रही हो। क्या यह मेरे प्रति प्रेम और मेरे कल्याण की भावना है!"

"डियर, तुम्हारे प्रति प्रेम और कल्याण के अतिरिक्त मेरी और क्या भावना हो सकती है। मैंने तो तुम्हारे प्रेम मे उचित-अनुचित, अन्तस-कॉन्शेस किसी बाधा को नही माना।" हेमा का कण्ठ आंसुओं से थरथरा गया—"तुमसे मेरा एक अनुरोध है—जैसे भी हो वर्मा को बचा लो! डियर, तुम्हारे लिये उसमें कोई कठिनाई या रिस्क नही है।"

सिंह ने ऊब से इनकार के सकेत में गर्दन हिलायी—"प्रश्न कठिनाई और रिस्क का नही है। तुम कह रही हो, तुम न्याय नही चाहती। तुम्हारे अनुरोध की ध्वनि स्पष्ट है कि मिस्टर वर्मा ने गलतियां की हैं। तुम मुझसे उन गलतियों

को ढंकने का, उनमे भागी बनने का, दूसरे लोगों को वैसे आचरण के लिये प्रोत्साहन देने का, समाज की व्यवस्था को धोखा देने का अपराध करवाना चाहती हो। मैं ऐसा अनुरोध कैसे मान सकता हूँ ?"

"डियर, तुम तो बिल्कुल दफ्तरी और अदालती मुहावरों में बोल रहे हो।" हेमा ने कातरता से कहा—"मैंने तो तुम्हारे भरोसे बिना लाग-लपेट के कह दिया है कि न्याय के लिये लडने नही आयी हूँ, तुमसे सहायता चाहती हूँ। तुम मेरा अनुरोध मानकर इस स्थिति को कानूनी न्याय के ही नही मानवीय सहृदयता और उदारता के दृष्टिकोण से भी तो देख सकते हो।"

"मानवी सहृदयता और उदारता से क्या अभिप्राय ? न्याय और सुव्यवस्था के बिना सम्पूर्ण समाज का, सभी व्यक्तियो का, जीवन संकट बन जायगा। समाज में न्याय और व्यवस्था की रक्षा, सभी को जीवन के समान अधिकार की गारंटी ही सबसे महत्वपूर्ण मानवी न्याय और सहृदयता है।" सिंह ने उत्तर दिया।

"डियर, मेरी भी सुनो। तुम जानते हो हम लोगों की जिन्दगियां और परिस्थितियां ऐसी हैं कि" हेमा ने बेबसी प्रकट की—"न चाहने पर भी कदम डगमगा जाते हैं। कुछ काम या हरकतें सभी से ऐसी हो जाती हैं जिन्हें कानूनन अपराध कह दिया जा सकता है। बहुत से कारणो से व्यवस्था के हित मे भी ऐसी बहुत-सी बातों को नजरअन्दाज कर देना पडता है। यदि उतनी कडी कानूनी नजर से देखा जाये तो हम दोनों को भी अपराधी मानना पडेगा।" हेमा के ओंठ संकोच से दब गये और आंखे झुक गयी।

सिंह की आंखों में गुलाबी डोरे झलक आये। सोचा —मेरा अनुमान ठीक है। यह मुझे साथ मिला लेने, लपेट लेने का प्रयत्न है। मन मे उठी ग्लानि को वश कर हेमा को ओर देखा—"तुम विवाहित हो यह बात तुमने मुझे कल नहीं बतायी थी। मेरा भाव और धारणा क्या थी, यह तुम्हें मेरी बात से मालूम हो चुका है। तुमने विवाहित होने का तथ्य मुझसे क्यो छिपाया ?"

"मैंने छिपाया !" हेमा ने भौंवें उठाकर विस्मय प्रकट किया, "तुमने मुझसे पूछा कब था !"

"मैंने पूछा था," सिंह ने आग्रह किया, "तुम्हें कैसे पुकारूं। इस प्रश्न का भाव और क्या होगा ?"

"डियर, मैंने भी तो कहा था, मेरे नाम से, जैसे पुकारते थे। मैं तुम्हारे और अपने बीच, तुम्हारे प्रति प्रेम और समर्पण में कोई बाधा या विचार मानना नही चाहती। तुमसे भी ऐसी ही आशा करती हूँ।"

"तुम फिर वही बात, प्रेम मे बदले और मूल्य की ओर संकेत कर रही हो।" सिंह का स्वर जरा ऊंचा हो गया।

"डियर, मैं बदले और मूल्य की बात कहां कर रही हूँ।" हेमा ने अनुनय किया, "मैं केवल सहायता का अनुरोध कर रही हूँ। इतना अधिकार तो मेरा मानोगे।"

"कैसा अधिकार ?"

"कैसा अधिकार" हेमा ने विस्मय प्रकट किया, "तुम अन्तस और कॉन्शेंस को मानने वाले हो। अपने अन्तस से ही पूछो। प्रेम में सर्वस्व समर्पण करने वाली नारी का क्या-कितना कुछ अधिकार होना चाहिये !"

"सर्वस्व समर्पण""तुम्हारा अभिप्राय क्या है ?" सिंह के स्वर मे खिन्नता की झंकार आ गयी है, "मैं नही अनुभव करता कि तुमने मुझे कुछ दे दिया है या मैंने तुमसे कुछ ले लिया है। मैं तो नहीं समझता कि तुम्हारी सम्पूर्णता मे कुछ कमी आ गयी है।" खिन्नता उसके चेहरे पर भी झलक आयी।

हेमा विस्मय से एकटक सिंह की ओर देखती बहुत धीमे स्वर में बोली—"तुम्हारे जैसे नैतिक कॉन्शेस के व्यक्ति के मुख से ऐसी बात। क्या कह रहे हो डियर।"

"तुम शायद पहेली बुझा रही हो। सर्वस्व समर्पण से तुम्हारा अभिप्राय क्या है ?"

"मुझसे ही कहलवाना चाहते हो। जैसे तुम चाहो। नारी का सर्वस्व क्या होता है—नारी का नारीत्व। जिसके लिए पुरुष नारी की कामना करता है। जिसे पुरुष नारी का सतीत्व कहता है""।"

"नारी का समर्पण केवल फ्राड है, जाल है। वह समर्पण नही परिग्रह करती

है। बायलाजिकल (जीवन-व्यापार) का तथ्य यही है कि नारी देती नहीं, लेती है। वेश्या कुछ पल पुरुष को रिझाने के लिए, उसकी दो-चार दिन की कमाई हड़प लेती है। पतिव्रता जीवन भर के लिए रक्षा और पालन-पोषण वसूल करती है। उसे समर्पण कहना जाल है। इससे बड़ा परिग्रह क्या होगा !"

हेमा फिर पल भर सिंह की ओर देखती रही। मस्तिष्क पर जोर देने से उसकी भौंवे तनिक ऊपर उठ गयी थी—"डियर, यह तुम उन लोगो की बात कर रहे हो जो सतीत्व के दावे से नारी को कब्जे मे रखना चाहते हैं परन्तु जिसके चरणों मे नारी स्वयं अपना सर्वस्व अर्पण कर देती है उसके सम्मुख नारी का कुछ अधिकार नहीं मानोगे ?"

सिंह ने विरक्ति से गर्दन हिलायी—"कह चुका हूँ, तुम जिस बात को नारी का सर्वस्व बता रही हो क्या समाज में नारी की केवल उतनी ही सार्थकता है। क्या नारी के व्यक्तित्व की वही योग्यता और सामर्थ्य है। अपनी उस उपयोगिता को नित्य हजारों-लाखो नारियां अपनी सुविधा के लिए रुपये-रुपये, दो-दो रुपये में बेचती फिरती हैं। तुम उसी 'सर्वस्व' के मूल्य मे मेरा विवेक, मेरी कर्त्तव्य-निष्ठा, मेरा कान्शेंस खरीद लेना चाहती हो। खतम करो प्रेम मे सर्वस्व समर्पण का यह नाटक।"

हेमा का चेहरा अधिक पीला और नेत्र अधिक गुलाबी हो गये। स्वर वश करके बोली—"सिंह, भद्रता से बात करो। तुम पुलिस स्टेशन मे किसी मुजरिम से नहीं, अपनी अतिथि महिला से बात कर रहे हो।"

सिंह का स्वर भी कड़ा हो गया—"घर में घुस आया ठग या चोर अतिथि नहीं होता। तुमने मुजरिमों की तरह व्यवहार नही किया ? तुमने मुझसे छल किया और मुझ पर सर्वस्व अर्पण का एहसान बताकर मुझसे अपने कर्त्तव्य, समाज के प्रति विश्वासघात का अनुरोध कर रही हो। इसका मतलब है कोई भी धूर्त वेश्या सर्वस्व अर्पण के नाम पर जिसको चाहे मूर्ख बना ले। तुम अपने उस सर्वस्व का मोल दस, बीस, पचास, सौ रुपये ले लो और मेरा पीछा छोडो।"

हेमा की आंखो में आंसू और माथे पर पसीना छलक आया। वह कुर्सी पर सीधी हो गयी—"जबान संभाल कर बोलो।" वह स्वर दबा कर बोली थी

परन्तु ध्वनि मे फुंकार थी, "मेरी स्थिति से अनुचित लाभ उठाकर मुझे दोषी बता रहे हो। अपने पुलिसिया हथकंडे किसी और को दिखाना। अपनी ईमान-दारी और कान्शेस की डींग किसी और के सामने हांकना। मैंने तुम्हारी असलियत जान ली है। तुम्हें भी कटघरे में खड़ा करवा कर सब सीवने उधड़वा दूंगी। मुझसे संभल कर बात करो।"

हेमा की ओर एकटक दृष्टि लगाये सिंह ने उसकी चुनौती ध्यान से सुनी। मुस्कराया जैसे तनाव से मुक्ति पा ली हो—"दैट्स बैटर, अब ठीक है। प्रेम का नाटक समाप्त हुआ। साफ-साफ बात करना ही अच्छा है। तुम्हारा ख्याल है, मुझे कटघरे मे खड़ा करवा सकती हो। तुम्हें पूरा अवसर है। सहायता के लिये किसी को बुलाना चाहो तो टैलीफोन उस कोने में है।" सिंह ने फोन की ओर संकेत कर दिया।

"वह मैं स्वयं सोच लूगी।" हेमा ने ओठ काट कर रूमाल से आंसू पोंछ लिये।

"जैसे तुम चाहो" सिंह बोला, "तुमने मुझसे सहायता का अनुरोध किया था। तुम्हारे भले के लिये कह रहा हूं। सुनो, तुमने अपनी योजना के अनुसार मुझ पर अचूक फंदा फेंका था लेकिन फंदे में तुम स्वयं फंस रही हो। यदि मैं तुम्हे फंसाना चाहूं या मुझे तुम्हारा कुछ भी लिहाज न हो तो अभी फोन से पुलिस बुलवा कर और उन्हें तथ्य बताकर कि तुम मुझे धांधली में सहयोग के लिये फुसलाने आयी हो, तुम्हे पुलिस के हाथ सौंप सकता हूं। यह तुम्हारे पति के करप्ट व्यवहार का अच्छा-खासा प्रमाण होगा। इस बात के लिये पर्याप्त प्रमाण है कि तुम अपना सामान वेटिंग रूम में छोड़कर, स्वेच्छा से मेरा मकान खोज कर आयी हो परन्तु मैं तुम्हें परेशान करना ठीक नहीं समझता।"

बिशन ने झिझक से बैठक मे झांक कर सूचना दी—"हुजूर, रिक्शा आ गया।"

हेमा ने नौकर से आंसू छिपाने के लिये मुख दूसरी ओर कर कुछ ऊंचे स्वर मे कह दिया—"उसे कहो ज़रा ठहरे।" आंसू गालों पर बह आये। उन्हें पोंछने की चिन्ता न कर सिंह की ओर देख दबे स्वर में गिड़गिड़ायी—"बेबसी के

विक्षिप्ति में मेरे मुख से जो कुछ निकल गया उसे मुआफ़ कर दो। तुम्हारे सामने आंचल पसार कर" उसने दोनों हाथों से आंचल फैला दिया—"दया की भीख मांग रही हूँ। मेरी अवस्था और कातरता का अनुमान करो। सोचो, अपने पति और बच्ची को बचाने के लिये मैंने जो कुछ सहा है वह चिता मे कूद पड़ने से कम नहीं है.....।"

"मोमेंट, (ज़रा सुनो) तुम्हारा प्रयोजन स्पष्ट हो गया।" सिंह ने तर्जनी उठा कर टोक दिया—"प्रेम मे सर्वस्व समर्पण के मूल्य का तकाज़ा तो अब नहीं है न !"

"तकाज़े, तकरार, अधिकार की कोई बात नहीं है। हेमा के बोल आंसुओं से रुंध गये—"मैं केवल दया की भीख मांग रही हूँ। एक परिवार की सर्वनाश से रक्षा और जीवन के लिये दया की भीख मांग रही हूँ।"

सिंह ने हेमा की आंखों मे सीधे देखा—"इसमें दया का प्रश्न कहां है। मैं अपनी इच्छा से या अपने हानि-लाभ के लिये कुछ भी नही कर रहा हूँ। निर्णय भी मेरे हाथ में नहीं है। मेरा काम केवल तथ्य संग्रह कर विचारार्थ बड़े अफसरों के सामने पेश कर देना है।"

"परन्तु तुम जानते हो तथ्यों को इस प्रकार पेश करने का क्या प्रयोजन है और उसका क्या परिणाम होगा।" हेमा ने कातर आग्रह से कहा—"सिंह, तुम अपने विश्वास में तटस्थता और कर्तव्य भावना से तथ्य पेश करोगे और परिणाम मे एक परिवार का सर्वनाश हो जायेगा। जो हो गया हो गया। तुम उन्हें संभलने का अवसर दो। मैं समझती हूँ, कर्तव्य की भावना के मूल में तो दूसरों की भलाई और दया ही होनी चाहिये। तुम तो प्रकृति से सहृदय हो। इसीलिये तुम्हारे सामने आंचल पसार कर दया की भीख मांग रही हूँ।" हेमा के आंसू टपकने लगे।

"दया का यह बहुत विकृत दृष्टिकोण है।" सिंह खिन्नता वश नहीं कर पा रहा था—"तुम्हारे अनुरोध के अनुसार दया का अर्थ होगा समाज के प्रति निर्दयता और अत्याचार। सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था को छलने वालों के प्रति दया करके उन्हें समाज को धोखा देने छलने का अवसर देना। व्यवस्था

की शक्ति जिन लोगों के हाथ मे है उन्हें ही अव्यवस्था फैलाने देना। यह निरीह समाज के साथ छल, क्रूरता और अन्याय नही होगा ?" सिंह ने हेमा की ओर झुक कर पूछा—"तुम बताओ" यदि कोई समर्थ व्यक्ति मिस्टर वर्मा को राह चलते ठोंक-पीट दे और इस मामले को दबा देने के लिये पर्याप्त रिश्वत दे सके तो उसके प्रति दया करके ऐसे मामले को दबा दिया जाये ? तुम वैयक्तिक स्वार्थ का चश्मा हटाकर स्थिति को नहीं देख सकती। समाज की झोपड़ी में आग लगाने वाले व्यक्ति के प्रति दया करके, उसे आड़ देकर बचाना पूरे समाज के प्रति निर्दयता और विश्वासघात नही है ?" सिंह ने अपनी कलाई की ओर देखा—"अब गाड़ी मे अधिक समय नहीं है।"

हेमा ने ओंठ काट कर रूमाल आंखों पर रख लिया। वह रुलाई वश नहीं कर पा रही थी। हिचक कर रुंधे कण्ठ से बोली—"मेरे पास कोई दलील, तर्क नही है, दया की भीख मांग रही हूं।" उसने हाथ जोड़ दिये, "मनुष्यों से परिस्थितिवश भूल-चूक हो ही जाती है। देखो, तुम से भी……" उसे कण्ठ के अवरोध के कारण हिचकी आ गयी। बोल न सकी, रूमाल आंखों पर रख लिया।

"तुम फिर उसी बात को दोहरा रही हो" सिंह ने दबे परन्तु दृढ़ स्वर में कहा, "कह चुका हूं, मैंने बदनीयती से कुछ नही किया इसलिये मेरा कान्शेंस लज्जित नहीं है। अलबत्ता मुझे धोखा दिया गया है। उसका बदला मैं नहीं लेना चाहता। इसके अतिरिक्त मुझ से जो कुछ हुआ है उसकी तुलना स्वार्थ के लिये पूरे समाज को छलने की नीचता से नहीं की जानी चाहिये।" सिंह ने कुर्सी से उठने का उपक्रम करते हुए फिर घड़ी की ओर देखा, "व्यर्थ विवाद में गाड़ी का समय निकल जायेगा।"

"तुम मेरी बात भी नहीं सुनना चाहते !" हेमा रूमाल से आंखें खुश्क कर ओठ काट, कड़े स्वर में बोली, "मैं भी तुम्हें अन्तिम चेतावनी दे रही हूं। मैं करने पर आयी हूं तो सभी कुछ कर सकती हूं। अपनी सुरक्षित स्थिति के अभिमान में मत रहो कि जल्लाद की रस्सी तुम्हारे हाथ में है, चाहे जिसके गले में फंदा डाल कर कस दे सकते हो। तुम जानते हो, फंदे में तुम भी हो। मैं प्राणों और इज्जत की बाजी लगा कर भी बदला लूंगी।"

सिंह मुस्कराया—"तुम अपने मकान पर जाकर आराम से जो चाहो कर सकती हो। गाड़ी मिस करने की जरूरत नहीं है।"

"न, मैं तुम्हे बता देना चाहती हूँ; ताकि ऐसे अवसर की जरूरत न पड़े।" हेमा का स्वर तीखा हो गया।

"जैसे तुम चाहो।"

"तुम अपनी नीयत और कान्शेंस का ढोंग कर दूध धोये बन रहे हो। कानून तो नीयत और कान्शेस को नहीं पूछता। तुम्हारे ही अनुसार, तथ्य को देखता है। तुम बहुत भोले बन रहे थे कि मैंने तुम्हें अपने विवाहित होने का तथ्य नहीं बताया। यदि मैं अविवाहिता कुमारी ही होती तो भी तुम्हारी विवाहिता पत्नी तो नहीं थी। कानून से बिलकुल अनजान मैं भी नहीं हूँ। तुम्हें भी अपनी इस हरकत के लिये कानून के सामने जवाबदेही करनी पड़ेगी। यह मत समझो कि केवल दूसरे ही फंसे हुए हैं, तुम फंस ही नहीं सकते। मेरा तो सर्वनाश हो ही रहा है, तुम्हे भी नही छोड़ूँगी।"

सिंह ने स्थिति समझ लेने के भाव से सिर हिलाया और मुस्कराकर फिर कुर्सी पर बैठ गया—"सुनो, तुमने सहायता का अनुरोध किया था। सचमुच सहायता के लिये परामर्श दे रहा हूँ। तुम कहती हो तुम कानून से बिलकुल अनजान नही हो। तुम्हारे विचार मे मुझ पर परस्त्रीगमन का आरोप लगाया जा सकता है। और ऐसे मामले मे इच्छा और प्रयत्न स्त्री की ओर से प्रमाणित होने पर भी कानूनन दंडनीय पुरुष ही समझा जायगा। खैर, तुम स्वेच्छा से यहां आने का प्रयोजन मिस्टर वर्मा को बचाने के लिये मुझे लपेटने का स्वीकार करोगी ? ऐसी अवस्था में कानून और अदालत की दृष्टि में तुम्हारी शिकायत मेरी कर्त्तव्यपरायणता का प्रमाण होगा। यदि तुम स्वीकार करोगी कि तुम स्ट्रीट गर्ल (फिरतू वेश्या) का पेशा करती हो तो बताना होगा तुमने सर्वस्व समर्पण के लिये कितनी उजरत तय की थी·····।"

हेमा क्रोध में ऐसे झटके से उठी कि सामने रखी तिपाई को धक्का लग कर चाय उसकी साड़ी पर गिर गयी परन्तु वह रुक न सकी। साड़ी पर दाग लग जाने की क्या चिन्ता करती। सब ओर दाग ही दाग दिखायी दे रहे थे।

हेमा ने रिक्शा पर बैठ कर ही सांस लिया स्टेशन '

माडर्न

रंजना ने सास और डाक्टरनी के अनुशासन की विवशता में सौर के चालीस दिन बन्दिनी की तरह पूरे किये। इतने दिन बंगले की चारदोवारी के बाहर कदम नहीं रख सकी।

रंजना चालीसा पूरा होने पर इकतालीसवें दिन नवजात मुन्ने के लिये कुछ आवश्यक वस्तुएं ले आने के बहाने अपने पति दर्शन के साथ संध्या समय हज़रतगंज पहुँच गयी। इतने दिन बाद भीड़ में पांव-पैदल चल सकने से उसे बहुत अच्छा लग रहा था, मुक्ति की स्फूर्ति-सी। दोनों हज़रतगंज की गुंजान दुकानों के सामने फुटपाथ पर संध्या की ठसाठस भीड़ में कन्धे बचाते, खरीदा हुआ सामान बांहों में संभाले चले जा रहे थे।

हज़रतगंज में एक दुकान के सामने से गुज़रते समय रंजना की दृष्टि प्रायः ही अटक जाती है। दुकान में सामने शीशा मढ़ी अलमारी है। अलमारी में बिजली की छोटी-सी स्वचालित भट्ठी। भट्ठी की कड़ाही में मक्का के तीन-तीन, चार-चार दाने गिरते रहते हैं। दाने भुनकर, सफेद फूलों की तरह चटख जाते हैं और कड़ाही से उछल कर अलमारी में बिखरते रहते हैं। उस ओर नज़र जाने से रंजना के चेहरे पर मुस्कान आ जाती है। कह देती है—"हाय, खीलें कितनी प्यारी लगती हैं, जैसे बेला के फूल बरस रहे हों!"

रंजना की दृष्टि उस दिन भी बिजली की भट्ठी से बिखरती मक्का की खीलों की ओर चली गयी। वहां उसे दिखायी पड़ी मोना, एक सहेली के साथ।

मोना साधारण अभ्यास के अनुसार, अपनी ही जैसी आधुनिका सहेली नीना के साथ गंज की चकाचौंध रोशनी और भीड़ के अनुरूप संध्या की साज-सज्जा में थी। दोनों सहेलियां घर में संध्या की उदासी और बोरडम से बच सकने के लिये शापिंग के नाम गंजिंग कर लेती हैं।

रंजना और दर्शन को पहचान कर मोना की आंखों में प्रसन्नता झलक आयी—"हाय !" मोना ने नाभि से उठते उच्छ्वास से रंजना को अमरीकन में सम्बोधन किया, "हाउ डू यू डू ?"

"मज़े में। तुम बताओ।" रंजना बोली।

मोना अलमारी में चटख-चटख कर झड़ती खीलों की ओर संकेत कर मुस्करायी—"लाइक टु हैव सम !" उसने दर्शन की ओर भी देखा, "यू टू ?"

"आप लीजिये।" दर्शन भी मुस्कराया।

"ह्वाई डोन्ट यू हैव ? इट्स नाइस।" मोना हंसी।

"राह चलते चबेना क्या चबायें।" दर्शन बोला।

"नो ! इट्ज़ पाप-कार्न !" मोना ने दर्शन के एतराज़ पर विस्मय प्रकट किया, "एवरी बडी ईट्स इट।"

"जाने दो, इन्हें पसन्द नहीं है।" रंजना ने हंसकर टाला।

मोना का माता-पिता का दिया नाम मोहिनी है परन्तु इंगलिश स्कूल मे पढते समय सहेलियां उसके नाम को इंगलिश के लहजे में सटा सकने के लिये, नाम को प्यारा और सरल बना सकने के लिये उसे मोनी और फिर मोना ही पुकारने लगीं। मोहिनी को यह परिवर्तन पसन्द है। इसलिये कालेज में पढते समय भी सहेलियो में उसका यही नाम चालू रहा। रजना कालेज में मोना की सहपाठिन थी। उसकी रुचि और स्वभाव से परिचित। इसलिये अब भी उसे मोना ही पुकारती है।

मोना ने दर्शन की बांहों में दो डिब्बे और रंजना की बाह में थमे कागज के बडे थैले की ओर संकेत किया—"इतना सब क्या खरीद डाला ?"

"आस्टर मिल्क, झुनझुने।" रंजना हसी।

मोना किलक उठी—"ओह ! आई सी। कांग्रेट्स टू यू बोथ।" उसने दर्शन की ओर भी देखा, "सुना था, यू गाट ए ब्वाय। सो हैप्पी। क्या नाम-वाम रखा है ? हाऊ डू यू काल हिम ?"

"सिद्धार्थ।" रंजना ने बताया।

"सिद्धार्थ !" स्मृति को जगाने के यत्न मे मोना ने पलकें झपकी, "सिद्धार्थ

लगता है नाम कहीं पढ़ा है।"

दर्शन ने सहायता दी—"गौतम बुद्ध का नाम था।"

"ओह, राइट; दैट्स व्हाई। कहा था न पढ़ा है। बट.........कुछ पुराने ढंग का नाम है।"

मोना की सहेली ने सहयोग दिया—"इट्ज ए गुड नेम।" उसने मोना की ओर देखा, "हां, कुछ पुराना है।"

"पुराना ही नहीं, ऐतिहासिक।" दर्शन ने स्वीकार किया, "ईसा से छः सौ वर्ष पूर्व का।"

मोना ने अनुमोदन किया—"यस, यस, वेरी ओल्ड टाइप।"

रंजना बोल पड़ी—"तुम सुनाओ, कब तक खुशखबरी की उम्मीद करें!"

मोना हंसी—"ओह, वो तो होना ही है। लेट अस हैव सम गुड टाइम। दो-चार बरस। फिर तो होगा ही।"

रंजना बोली—"हाय, तुम्हारा भतीजा बहुत प्यारा है। उसे देखने को बहुत मन करता है, क्या नाम रक्खा है उसका ?"

"नाम तो अभी नहीं रक्खा। पिन्की-पिन्की पुकारते हैं।" मोना ने बताया, "तुम कोई अच्छा सा नाम बताओ, लेटेस्ट!"

"लेटेस्ट ?" दर्शन ने पूछा।

"हूं, आई वांट लेटेस्ट।" रंजना ने सुझाया, "पिन्की पुकारते हैं, नाम पोनी रख दो। कैसा रहेगा!"

"पोनी! वेल" मोना ने सराहना में आंखें घुमायीं, "गुड स्वीट नेम। साउण्ड्स क्रिस्प,.........क्वाइट माडर्न।"

रंजना ने घर जल्दी पहुँचने की विवशता प्रकट की और दायां हाथ उठा उंगलियों को मकड़ी की टांगों की तरह हिलाया—"बाई-बाई। फिर मिलेंगे।"

मोना और नीना से विदा लेकर रंजना और दर्शन कुछ ही कदम बढ़े थे दर्शन ने विस्मय प्रकट किया—"तुम भी हद कर देती हो। उसके भतीजे क नाम टट्टू रखने की सलाह दे दी। उसे पोनी शब्द के अर्थ का ख्याल नहीं आयेगा ?"

"तुम नहीं जानते मोना को। शी इज़ माडर्न। स्मृति से इसकी नाराजगी की बात नहीं बतायी तुम्हें ?"

"याद नहीं।" दर्शन ने उत्सुकता प्रकट की।

"सुनो," रंजना तेजी से कदम बढ़ाते हुए सुनाने लगी, "हम लोग बी० ए० फाइनल मे थीं तब भी मोना अपने नवीनता के ज्ञान और माडर्न होने की बहुत शेखी मारा करती थी। कभी बताती—आज फलाने रेस्ट्रां मे 'हाट-डाग' खाया, बड़ा डिलीशस था। हैव यू टेस्टिड 'हैम्बर्गर' ओह, इट्स मारवेलस ! फलाने रेस्ट्रां मे 'कसाटा' या 'स्नेत्सिल' बड़ा रिमार्केबल होता है।"

एक दिन मोना ऐसी ही शेखी मार रही थी। स्मृति बोल पड़ी—"अरे ये सब तो पुरानी डिशेज़ हैं। तुमने 'वैरिटी' नहीं कभी ट्राई की ? दो दिन पहले अंकल के साथ क्वालिटी गयी थी। उन्होने वैरिटी के लिए आर्डर दिया था। 'ओह, वंडरफुल ! आई कान्ट टेल यू। इट इज़ एन इटैलियन डिश।"

मोना चार-पांच दिन बाद क्लास मे आते ही स्मृति पर झुझला उठी—"तुम बड़ी चीट हो। इन्डीसेन्ट मजाक करती हो। तुमसे कभी नही बोलूगी !"

मोना की झुंझलाहट का कारण पता चला इसकी खास सहेली मीट्ठ से। मोना तीन-चार सहेलियो के साथ क्वालिटी गयी थी। स्मृति से नयी डिश का नाम सुना था। सबसे आधुनिक होने के गर्व मे उसने 'वैरिटी' के लिये आर्डर दे दिया। बैरा कुछ समझा नहीं। उसने जाकर हेड बैरे को बताया। हेड बैरा आया। उसने मीनू दिखाया—"इसमें बता दीजिये, कौन सी डिश !"

मोना ने साथ की लड़कियों पर रोब डालने के लिये कह दिया—"इसमें नहीं है। यह नयी डिश है। हमने खाया है।"

हेड बैरा मैनेजर के पास गया। मैनेजर आया। उसने विनय से पूछा—"आप क्या चाहती हैं ?"

मोना ने रोब से कह दिया—"वैरिटी।"

मैनेजर कुछ सकपकाया। उसने क्षमा मांगी—"आइ एम सॉरी। यह डिश तो हमारे यहां कभी नहीं बनी। क्षमा कीजिये, हमने नाम भी नही सुना।"

दूसरी लड़कियां मुस्करा दीं। मोना क्रोध मे तमतमा कर उठ आयी। दूसरे

दिन स्मृति से लड़ पड़ी—तुम चीट हो। इन्डीसेंट मजाक करती हो।

स्मृति मोना की झल्लाहट के उत्तर में हंस पड़ी—"हमने क्या इन्डीसेन्ट मजाक किया। तुम्हें संतोष डिश खाने से नहीं, नये नाम से होता है। हमने तुम्हें एक नया नाम बता दिया। इसमें चीटिंग क्या हुआ ?"

स्मृति से मोना नाराज हो गयी। बहुत दिन तक उससे बोली नहीं।

रंजना ने दर्शन की ओर देखा—"अब समझे मोना को। उसे अर्थ से क्या मतलब ! उसे मतलब है नयेपन, माडर्न से।"

"लेकिन यह साधारण बात नहीं।" दर्शन ने सराहना में भवें उठायी, वह किसी प्रयोजन या लाभ के विचार से आधुनिक नहीं बनना चाहती। माडर्न होना उसका निष्काम कर्म है।"

सीख

गत वर्ष खन्ना के यहां गुलदाउदी के गमले खूब बन पाये थे। सबसे बढ़िया पांच-छः गमले लान के बीचोबीच रखवा दिये थे।

दिसम्बर का अन्तिम रविवार था। दोपहर में कपूर आ गया। खन्ना ने बेंत की दो कुर्सियां गमलों के समीप डलवा दीं, जाडे की धूप का मजा लेने के लिये। दोनो पुराने अन्तरग मित्र हैं। बेतकल्लुफी है।

कपूर का पांच बरस का बेटा राजू भी साथ आ गया था। कुर्सियों के समीप अपनी समवयस्का खन्ना की बेटी बबली के साथ कंचे खेल रहा था। राजू की कुछ ऐसी आदत है कि जिस काम के लिये बरजा जाये, जरूर करना चाहता है।

कपूर अपनी परेशानी बता रहा था—"जुलाई मे चूक गये। राजू मां के साथ पंजाब चला गया था। चार मास से सिर मार रहे हैं। किसी कन्वेंट या अच्छे स्कूल मे जगह नही मिल रही। म्यूनिसिपल और सरकारी स्कूलों का हाल जानते हो। वहां बच्चे बदतमीजो और गन्दगी के सिवा क्या सीखेंगे····" कनखियो से नजर बेटे की ओर थी। समीप ही फूल थे।

राजू खेल में ठिठका। उसका ध्यान समीप एक बहुत बड़े फूल की ओर चला गया था। फूल था ही ऐसा कि सबका ध्यान अटके। कपूर ने तर्जनी उठा कर बेटे को चेतावनी दी—"खबरदार, फूल नहीं छूना!"

राजू पल भर ठिठका और उसने लपक कर फूल की डडी मरोड़ दी।

कपूर बेटे की उद्दंडता से क्षुब्ध हो गया—"उल्लू!"

"ओफ़!" खन्ना ने मुस्कराकर मित्र को टोका, "ग़लत बात सिखाते हो बच्चे को। कहो—उल्लू का पट्ठा।"

खूब बचे !

यूनिवर्सिटी स्टाफ-क्लब में अपरिचित चेहरे दिखाई देने की सम्भावना कम रहती है। केवल अध्यापक वहा जा सकते हैं। विषयो के अध्यापन का समय वर्षों से निश्चित है। विभिन्न पीरियडों मे परस्पर परिचित लोग ही कुछ विश्राम, गपशप या चाय-काफी के लिये आते हैं और अपने अभ्यस्त स्थानों पर ही बैठते हैं। कोई परिचित कई दिन न आये पर अपरिचित नही आते।

कुमार सप्ताह मे दो बार, मंगल और शुक्र को, पाचवे पीरियड मे भी क्लास लेता है। उसके बाद यदि पुस्तकालय जाने का विचार हो तो वह आध-पौन घन्टे क्लब में बैठकर काफ़ी ले लेता है। लगभग घन्टे भर बोलने-समझाने से कुछ थकावट हो ही जाती है। क्लब में वीरसिंह से प्रायः मुलाकात हो जाती है। दोनों सहपाठी थे। उनके अध्ययन-अध्यापन के विषय अलग-अलग हैं परन्तु दृष्टिकोण और रुचि मे कुछ साम्य है, बातचीत जमती है।

स्टाफ़ क्लब मे चौथे पीरियड के बाद कम ही लोग आते हैं। कुमार आया तो दायें हाथ के कोने में आराम कुसियों पर डाक्टर गुहा और मिस्टर मजुमदार उगलियों में सिगार थामे धीमे-धीमे बतिया रहे थे। दाहिनी ओर, उसकी अभ्यस्त जगह के सामने बैठी थी हिन्दी की प्राध्यापक डाक्टर कृष्णा मिश्रा। डा० मिश्रा के समीप की कुर्सी पर एक अपरिचित चेहरा कुमारी मिश्रा की अपेक्षा अल्पवयस, पच्चीस के आस-पास। गठन और मुद्रा से खूब चुस्त युवती। वर्ण पक्का गंदमी, स्वस्थ निर्दोष आंखें। दोनों परस्पर बात-चीत में डूबीं। कुमार की ओर उनका ध्यान न गया। कुमार अपनी कुर्सी के समीप तिपाई से एक पत्रिका उठाकर पन्ने पलटने लगा। कुमार ने सुना—"नमस्कार डाक्टर मिश्रा। नमस्कार डाक्टर सिंह।"

कुमार ने पत्रिका से नजर उठायी। सिंह उसके समीप की कुर्सी पर आ गया। कुमार का डाक्टर मिश्रा से भी नमस्कार हो गया। डाक्टर मिश्रा के समीप बैठी युवती परिचय के अभाव मे नजर बचाये रही। सिंह ने कुमार की ओर झुक कर पूछ लिया—"क्या देख रहे हो ?"

कुमार पत्रिका की आड कर सिंह के कान मे फुसफुसाया—"यह नया चेहरा कहाँ से ?"

"किसी डिपार्टमेन्ट में नयी रंगरुट आयी होगी।" सिंह ने उसी प्रकार उत्तर दिया, "मिश्रा से तो कहीं बेहतर है। परिचय किया जाये ?"

"यहाँ अपरिचित का क्या काम ?" कुमार ने समर्थन किया।

"हूँ....." सिंह ने स्वर ऊंचा किया, "काफ़ी हो जाये !" सम्मुख देखा, "डाक्टर मिश्रा, आप काफ़ी नही लेगी ?"

"ले लेगे डाक्टर साहब।" कुमारी कृष्णा मिश्रा को 'डाक्टर' सम्बोधन के लिये आग्रह है। वह पी० एच० डी० सहयोगियों को सदा डाक्टर पुकारती है। दूसरे भी उसे डाक्टर कहना नही भूलते। कृष्णा मिश्रा ने संगिनी का परिचय दिया—"कुमारी साधना सम्बल।" कुमारी शब्द बहुत स्पष्ट बोला गया था। बता देना चाहती थीं, सम्बल उस मामले में उनसे अधिक भाग्यवान नहीं। "इन्होने इंगलिश डिपार्टमेन्ट में मिस्टर माहोर की एवज़ी मे ज्वाइन किया है।"

कुमारी साधना सम्बल ने दोनों हाथ जोड़ विनय की मुस्कान से दोनो नवपरिचितों को नमस्कार किया—"आपसे परिचय पाकर बहुत प्रसन्नता हुई।" ससंकोच गम्भीरता की अपेक्षा सविनय मुस्कान से कन्वेन्ट या यूरोपियन स्कूल-कालेज के प्रभाव का अनुमान हो सकता था।

डाक्टर मिश्रा ने सिंह की ओर सकेत किया—"डाक्टर वीरसिंह, संस्कृत विभाग।" फिर कुमार की ओर, "डाक्टर अनन्त कुमार, इतिहास।"

कुमार और सिंह प्राय: साथ ही बोले—"सहयोगी का स्वागत।" सम्बल से भी काफ़ी मे सहयोग के लिये अनुरोध किया।

महिलाओ को काफी रूम मे पहले प्रवेश का अवसर देने के लिये दोनों ठिठक गये। सिंह ने कुमार के कान की ओर झुक कर उसकी कोहनी दबायी

ब बचे !]

"सम्बल है, यानी सहारा ! यह कुमारी और तुम अनन्त कुमार; शुभस्य शीघ्रम !"

काफ़ी के प्याले पर परिचय पूरा हो गया। कुमारी साधना सम्बल इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से अंग्रेजी में एम० ए० करने के बाद एक स्थानीय कन्या कालेज में अंग्रेजी पढ़ा रही थीं। माहौर अठारह मास के ब्रिटिश स्कालरशिप पर अंग्रेजी साहित्य के विशेष अध्ययन के लिये कैम्ब्रिज गया था। अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष की कृपा से साधना सम्बल को एवजी में जगह मिल गयी थी।

काफ़ी रूम से लाइब्रेरी की ओर जाते समय कुमार और सिंह में कुछ और टिप्पणी विनिमय हो गया। पुरुष प्राध्यापकों में कृष्णा मिश्रा के लिये नाम था—'ग्राम्या'। साधना सम्बल उन्हें चुस्त 'नागरिका नायिका' जंची। अंग्रेजी उच्चारण का लोच-लहजा ठीक। विशेषणों, अनुसर्गों और उपसर्गों का प्रचुर प्रयोग। वार्तालाप में निस्संकोच और चुस्त। सिंह ने कुछ और भी कहा। कुमार मुस्करा दिया।

सप्ताह भर में कुमार और सम्बल का आमना-सामना क्लब में या क्लास के मार्ग में दो-तीन बार हो गया। विनय की मुस्कान से नमस्कार हो जाता। अगले शुक्रवार सिंह और कुमार बातचीत करते क्लब रूम में आये तो सम्बल मौजूद थी, कृष्णा मिश्रा नहीं।

परस्पर नमस्कार के पश्चात् सिंह ने पूछ लिया—"मिस सम्बल, इलाहाबाद की तुलना में लखनऊ वर्सिटी का वातावरण कैसा लग रहा है ?"

"कुछ वैसा ही परन्तु लखनऊ का अपना रंग भी है। मुझे पसन्द है।" सम्बल मुस्करा दी।

कुमार के प्रस्ताव पर तीनों काफ़ी रूम में चले गये। काफ़ी के समय बातचीत चलती रही। सिंह संस्कृत का प्राध्यापक है और कुमार इतिहास का परन्तु दोनों को ही साहित्य में रुचि है। सिंह ने सम्बल की थाह लेने के लिये पाउंड, इलियट और स्पेंडर की कविता की चर्चा की। आधुनिक कविता से सम्बल की बहुत आत्मीयता नहीं जान पड़ी परन्तु कृष्णा मिश्रा की तरह बिल्कुल बेखबर भी नहीं। सम्बल ने स्वीकार किया, उसकी रुचि पद्य की अपेक्षा गद्य की ओर

है। आधुनिक अंग्रेजी और हिन्दी कथा साहित्य का भी प्रसग आया। सिंह और कुमार को अनुमान हो गया, सम्बल एम० ए० की परीक्षा पास कर लेने के बाद पुस्तकों से उपराम नहीं हो गयी।

शुक्रवार कुमार दूसरे और चौथे पीरियड मे क्लास लेता है। तीसरा पीरियड काटने के लिये वह एक पुस्तक साथ ले आया था। काफ़ी के समय पुस्तक मेज कोने पर रख दी थी। कुमार से अनुमति लेकर सम्बल पुस्तक की जिल्द पर छपी सम्मतियां पढ़ रही थी। कुमार ने कहा—"तीन चौथाई पढ़ चुका हूँ। बहुत रोचक है। आप पढ़ना चाहें तो मंगलवार को ले सकती है।"

"जरूर धन्यवाद।" सम्बल ने कृतज्ञता प्रकट की।

काफ़ी के बाद सिंह और कुमार पुस्तकालय की ओर चल दिये। सिंह ने कुमार की कोहनी दबाई—"कहो पट्ठे, चुग्गा डालने लगे?"

"बेदाना की पांत से दांत कितने प्यारे हैं।" कुमार मुस्कराया "कमर और कूल्हों का अनुपात भी बुरा नहीं।"

"अमां, औरत और होती क्या है!" सिंह ने कुमार का हाथ मसक दिया, "संस्कृत मे तो सुन्दरी का पर्यायवाची ही 'नितम्बिनी' है।"

मंगलवार कुमार चौथे पीरियड के बाद क्लब की ओर जा रहा था। सम्बल रास्ते मे मिल गयी—"हाओ नाइस। मैं पुस्तक के लिये ही जा रही थी।"

पुस्तक कुमार के हाथ में थी—"हाजिर है। काफ़ी की इच्छा नहीं?"

"धन्यवाद, आज रहने दीजिये।"

"मकान लौट रही हैं? चलिये हम भी चले।" दोनों बस के लिये यूनिवर्सिटी रोड की ओर चल दिये। बस मे हलवासिया मार्केट के स्टाप तक पहुँचते-पहुँचते सम्बल ने रायल कैफ़े में काफ़ी ले लेना स्वीकार कर लिया।

कुमार और सम्बल के परिचय का सूत्रपात हुआ था जुलाई के मध्य मे ग्रीष्मावकाश के पश्चात् यूनिवर्सिटी खुलने के समय। सितम्बर समाप्त होते-होते घनिष्ठता हो गयी। दोनों जान गये थे कि दूसरे को किस दिन किस-किस पीरियड मे क्लास लेनी होती है। सप्ताह में एक-दो बार स्टाफ़ क्लब या वर्सिटी

रेस्तोरां में मुलाकात होती तो एक बार हजरतगंज के किसी रेस्तोरां मे भी चाय-काफ़ी के लिये साथ चले जाते। दोनों ने ही दूसरे में संगति की इच्छा भांप ली थी। उनकी मुलाकातों की ओर सिंह का भी ध्यान गया। उसने मित्रता के निस्संकोच से कुमार की कोहनी दबा कर सतर्क कर दिया—"पार्टनर, मादा घोंसला बनाने के फ़िक्र में है।" कुमार मुस्करा दिया परन्तु अब उसे सम्बल के प्रति सिंह के कटाक्ष अच्छे न लगते थे। वह सिंह को टाल कर ही सम्बल से मिलता-जुलता था।

रिवाज के मुताबिक नारी की स्थिति प्रथम परिचय में ही "कुमारी" या "श्रीमती" शब्दो से स्पष्ट हो जाती है परन्तु पुरुषो का परिचय देते समय ऐसी कोई प्रणाली नही। ऐसा प्रश्न सीधे पूछ लेना भी कुमारियो को अटपटा ही लगता है। परन्तु सम्बल के लिये यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण था। कुमार एक संध्या सम्बल को रेस्तोरां में कुछ देर तक रोके रहा। विलम्ब कर देने के लिये क्षमा भी मांगता रहा—......"विलम्ब से आपको असुविधा तो होगी परन्तु कुछ मिनिट ठहरिये।"

सम्बल को अवसर मिल गया, मुस्करायी—"विलम्ब के लिये मां को समझा देना कठिन नही, मिसेज का समाधान मुश्किल होता है।" संकोच छिपाने के लिये हंस दी।

"ऐसी जवाबदेही से मुक्त हूं।" कुमार भी हंसा।

अवसर मिल गया था तो सम्बल ने पूरी थाह ले लेनी चाही। प्लेट से एक वेफर लेकर मुस्करायी—"ऐसे वैराग्य का कारण ?"

"वैराग्य हरगिज नही !" कुमार ने उत्तर दिया। "विवाह बंधन को जीवन के लिये अनिवार्य नहीं समझता।"

"आपके परिवार के लोग भी आप ही की भांति उदार हैं ?' सम्बल फि मुस्करायी।

"नही, परिवार बहुत जोर डाल रहा है।" कुमार ने समाप्तप्राय सिगरे ऐश-ट्रे में दबा दिया, "परन्तु मैं जीवन भर के लिये ऐसी लड़की या स्त्री से बं जाना कैसे स्वीकार कर लूं जो मुझे जानती-पहचानती नही। केवल जीवन

भरण-पोषण की आशा में मुझ से बंधने के लिये तैयार हो जाये। ऐसी व्यक्तित्वहीन संगति कैसे सह्य हो सकती है ?" वह मुस्कराया, "परन्तु ऐसा प्रश्न आपसे भी पूछा जा सकता है।"

सम्बल झेपने के बजाय मुस्करायी—"वही बात जो आपने कही; अपने व्यक्तित्व की रक्षा की इच्छा। घरेलू जीव मात्र बन जाने की कल्पना बहुत आकर्षक नहीं लगती।"

सम्बल के साथ कुमार विधानसभा मार्ग के शुरू में रिक्शा के अड्डे तक गया। रिक्शा पर हुसैनगंज की ओर जाते समय सम्बल सन्तोष और आशा की उमंग अनुभव कर रही थी।

दसहरे पर दो सप्ताह के अवकाश मे कुमार एक मित्र के निमंत्रण पर रानीखेत चला गया था। सम्बल को मालूम था। सोमवार यूनिवर्सिटी खुली। कुमार को याद था, सोमवार सम्बल पहले और तीसरे पीरियड मे क्लास लेती थी। सम्बल को भी मालूम था, कुमार का केवल तीसरा पीरियड था। संयोग से तीसरे पीरियड के बाद एक-दूसरे को बस स्टैन्ड की ओर जाते दिखायी दे गये। दोपहर के समय बसों में भीड़ नहीं होती। एक साथ बैठे। हजरतगंज पहुँचते-पहुँचते कुमार ने पूछ लिया—"आपके सीधे घर न पहुँचने से मदर को चिन्ता होगी ?"

"मदर को चिन्ता संध्या साढ़े सात-आठ के बाद आरम्भ होती है।" सम्बल ने आश्वासन दिया।

"लंच 'क्वालिटी' में लिया जाये।" कुमार ने प्रस्ताव किया।

"नाइस आफ़ यू।" सम्बल ने उत्साह से स्वीकृति दी।

'क्वालिटी' में उस समय भी काफ़ी ग्राहक थे। अपेक्षाकृत प्राइवेसी की आशा से वे 'कपूर' मे गये। बैरे को आर्डर दे दिया जाने पर सम्बल ने बात आरम्भ की—"सुना है, रानीखेत बहुत सुन्दर स्थान है।"

"है तो।"

"खूब मन लगा ?"

"जरा नही। मन तो आपको याद करता रहा।" कुमार ने सम्बल से आंखे

भला कर कह दिया। सम्बल के चेहरे पर गुलाबी झलक और आंखों में चमक आ गयी —"हाओ स्वीट !"

लंच शनैः-शनैः चलता रहा। परस्पर सन्तोष देने वाली संगति में प्रसंगों की क्या कमी। लंच के अन्त मे आइसक्रीम, फिर कॉफ़ी। अभी ढाई ही बजे थे।

"अभी तो आपके पास बहुत समय है ?" कुमार ने विश्वास के स्वर में पूछा।

"हां मुझे लौटने की उतावली नही है।"

"मेफेयर' में साढ़े तीन बजे का शो देख लें।"

"फ़ाइन !" सम्बल ने सोत्साह स्वीकार कर लिया।

कुमार और सम्बल फिल्म देख कर सिनेमा हाल से निकले तो अभी छः नही बजे थे। कुमार ने काफी का सुझाव दिया। वे दोनों रायल कैफ़े में चले गये। साढ़े सात तक बैठे। काफ़ी के बाद सम्बल को कुमार विधानसभा मार्ग तक छोडने गया तो साथ चलता ही गया—"यदि थक न गयी हो तो टहलते-टहलते हुसैनगंज तक चलें।"

"आई वुड लव टु (यही चाहती हूँ)।"

कुमार और सम्बल हुसैनगज के निचले चौराहे तक पहुँच कर ठिठक गये, पल भर खड़े रहे। कुमार ने बाई-बाई के लिये हाथ बढा दिया। ऐसा यह पहला अवसर था। सम्बल ने सामीप्य के इस संकेत का स्वागत अपना नरम हाथ मजबूती से मिला कर किया। उस रात वह बिजली बुझाकर बिस्तर में लेटी तो मन उमग रहा था। आंखे मूंदे कल्पना मे डूब गयी। इतनी बड़ी और गम्भीर बात की कल्पना वह अंग्रेजी शब्दों में कर रही थी""""स्वीट !""""प्रगति ठीक है""""अनुकूल अवसर आ रहा है।

कुमार और सम्बल स्टाफ़ क्लब के बाहर सप्ताह में एक-दो के बजाय तीन-चार बार मिलने लगे। दो बार और 'कपूर' में लंच लिया, फिल्म भी देखी। कुमार ऐसे अवसर पर सम्बल को हुसैनगंज के चौराहे पर हाथ मिला कर विदा देने के लिये चला जाता। नवम्बर के तीसरे सप्ताह में लन्च के बाद कुमार ने पूछा—"फ़िल्म देखने की इच्छा है ?"

सम्बल आंखें मिलाकर मुस्करायी—"देख सकते हैं परन्तु वहां बातचीत के लिये अवसर नहीं होता।"

"ठीक कहती हैं।" कुमार ने स्वीकार किया। "आपत्ति न हो तो मेरे यहां चलिये, चाय के समय तक बैठेंगे।"

सम्बल जान चुकी थी, कुमार अपने एक सहग्रामी मित्र के साथ लारेंस टेरैस के फ्लैट में रहता था। मित्र आई० जी० एस० में इंजीनियर है। मित्र की पत्नी भी साथ नहीं। मकान, रसोई, नौकर सब साझे में है। सम्बल को याद आये बिना न रहा, मकान में दोनों अकेले होंगे। परन्तु कुमार को समझ-बूझ लिया था। आत्मविश्वास भी था और बातचीत के लिये अवसर की इच्छा।

मुस्करायी—"आपत्ति क्या हो सकती है!"

नौकर बाल्कनी मे चटाई पर लेटा बीडी पी रहा था। मालिक को एक महिला के साथ आया देखकर संभ्रम मे उठकर चटाई लपेटने लगा। कुमार ने उसे बता दिया—"हम खाना खा कर आये है। पांच बजे चाय लेंगे।" अभिप्राय था, उसे ढाई घन्टे के लिये छुट्टी थी। बाल्कनी में खुलते कमरे में दरी बिछी थी, एक अच्छा बड़ा सोफ़ासेट और दो बेत की कुर्सियां। दीवाल में दो आल्मारियों में और एक शेल्फ पर पुस्तकें। सम्बल ने अनुमान कर लिया, सांझी बैठक होगी।

कुमार हल्के ऊनी सूट मे था। सम्बल भी हल्की ऊनी कोटी पहने थी। धूप में चल कर आने से चिनग अनुभव होने लगी थी। कुमार ने असुविधा के भाव से कंधे सिकोड़ कर कहा—"अशिष्टता न मानें तो कोट उतार दूं?"

"अपने घर में हैं, रिलैक्स कीजिये। तकल्लुफ़ की क्या जरूरत!" सम्बल ने अनुमति दी।

कुमार भीतर के कोरीडोर से एक कमरे में चला गया। सम्बल ने भी एकान्त देख, साड़ी का पल्ला कंधे से नीचे डाल कोटी उतार ली और खड़ी होकर पल्ला हाथ में लिये कमर पर साड़ी के बल ठीक करने लगी। कुमार के बैठक में लौटते ही उसने पल्ला कंधे पर ले लिया परन्तु वक्ष पर गहरी काट की बंडी के कसाव और उघड़ी क्षीण कमर की झलक देकर। कुमार के सहसा आ जाने से

झेंप में पलकें झुक कर हल्की मुस्कान भी आ गयी ।

कुमार को सम्बल की अन्य सुविधा का भी ध्यान आया—"हाथ-बाथ धोने की इच्छा हो तो उधर जगह है ।" उसने कोरीडोर की ओर संकेत कर दिया ।

"थैंक्स !" सम्बल अपना पर्स लेकर उधर चली गयी । लौटी तो चेहरे पर अधिक ताजगी थी ।

कुमार ने सोफ़ा की ओर दोनों बाहों के फैलाव से संकेत किया—"कम्पलीट रिलैक्सेशन के लिये सोफ़ा का प्रयोग भी कर सकती हो ।"

"धन्यवाद !" सम्बल ने पलकें झपक, होंठ दबा मुस्कान से कुमार के सुझाव को व्यंजना दे दी, "फिलहाल इस कुर्सी पर ही पर्याप्त सुविधा रहेगी ।" वह कुमार के सामने बैठ गयी ।

कुमार ने सिगरेट का पैकेट बीच की तिपाई पर से उठाकर एक सिगरेट सुलगा लिया—"अब कहिये !"

"जो कहिये । इजाज़त हो तो आपका एक सिगरेट ले लूं, फार कम्पलीट रिलैक्सेशन ।"

"अवश्य ।" कुमार ने तत्परता से पैकेट में से एक सिगरेट उठाकर उसकी ओर बढ़ा दिया, "पहले कभी सिगरेट की इच्छा नहीं प्रकट की ।" उसने कुर्सी से उठ, माचिस जलाकर सम्बल की सिगरेट सुलगा दी ।

"अवसर ही कब मिलता है ?" सम्बल ने हल्का कश लिया, "हमारे समाज मे नर-नारी के लिये शील की पृथक मान्यतायें हैं । घर मे माँ के सामने पी नहीं सकती । कालेज मे भी उचित नहीं । स्टाफ क्लब में भी लोग देख कर चौंकेंगे ।" और बताया, "दो सहेलियाँ पीने वाली हैं । उन्हीं मे से एक ने सिखाया था ।"

कुमार के कौतूहल के समाधान के लिये सम्बल सिगरेट पीना सिखाने वाली सहेली का परिचय देने लगी—सहपाठिन थी, पहाड़ी ब्राह्मण परिवार की बेटी परन्तु एक क्रिश्चियन मिलिटरी अफ़सर से लव मैरेज की है । उनके कोर्टिंग पीरियड के रोचक प्रसंग । विवाह से पूर्व ही लवर के साथ मसूरी में रोमांस का वर्णन । बातचीत का आरम्भ प्रेम-प्रणय के प्रसंग से हुआ, जो अमित होता है । नर-नारी मे स्वाभाविक आकर्षण तथा प्रेम के सम्बन्ध मे सामाजिक तथा वैयक्तिक

नैतिकता के दृष्टिकोण से बौद्धिक स्तर पर निधड़क और रोमांचक बातचीत। मानव जीवन में प्रेम-प्रणय और यौवन प्रवृत्ति की स्वाभाविकता तथा अवसर की चर्चा''''इच्छाओं और विचारों की अभिव्यक्ति और निष्पत्ति का साधन शरीर ही है। शरीर या इन्द्रियमाध्यम के बिना मन-मस्तिष्क के झुकाव की क्या सम्भावना! इच्छाओं, भावनाओं के अपूर्ण असफल और कुंठित रहने पर केवल यंत्रणा का कारण होना।

कुमार ने प्रेम की सरल परिभाषा की—नर-नारी में प्रेम और आकर्षण का अर्थ मन और तन के परस्पर ऐक्य और मेल की चाह और प्रवृत्ति है। पूर्ण शारीरिक ऐक्य ही प्रेम-आकर्षण की निष्पत्ति है। अन्तर रहने से प्रेम भावना की पूर्ति अथवा निष्पत्ति सम्भव नहीं। अन्तर और ऐक्य या प्रेम एक दूसरे का इन्कार है।

सम्बल ऐसी मार्मिक और रोमांचक चर्चा से स्फुरण और तनाव अनुभव कर कुमार की अनुभूति का भी अनुमान कर रही थी। प्रत्यक्ष भी देख रही थी—कुमार ने ऐश-ट्रे पर सुलगता सिगरेट भूल कर दूसरा सुलगा लिया था। वह लगातार सिगरेट फूंकता जा रहा था; मानों संभले रहने में सिगरेट सहायक हो। उसने कुमार को इतने सिगरेट पीते पहले नहीं देखा था। सम्बल अपनी आंखों की गुलाबी झलक न देख सकती थी परन्तु बैठक में प्रकाश घट जाने पर भी कुमार की पलकें उसे भारी लग रही थी। कुमार का बायां हाथ बार-बार पैंट की जेब में चला जाता। बार-बार दाहिने घुटने पर बाया या बायें पर दाहिना घुटना चढ़ा लेना, स्वर में खरखरापन। सम्बल अपने रक्त के उद्वेग से सिहर कर घुटने भिड़ाये थी। कुमार पर अपने प्रभाव का गर्व और आनन्द उसके रक्त के वेग को और बढ़ा रहा था। कुमार कोई बात कह कर दूसरा तर्क देने से पहले खिड़की या फर्श की ओर दृष्टि कर कुछ पल सोचने लगता तो सम्बल पुलक से आशा करने लगती, अब शायद''''''''!

नौकर आ गया। सूर्यास्त हो चुका था। उसने स्विच दबा कर प्रकाश कर दिया और रसोई की ओर चला गया। बैठक उज्ज्वल प्रकाश से भर गयी। सम्बल ने देखा—कुमार की आंखें गहरी गुलाबी हो गयी थीं और चेहरे पर

वेह्वलता। उसके मन-तन में स्फुरण कौंध गया। उद्रेक को वश करने के लिये पलकें कलाई पर घड़ी की ओर झुका लीं। कुमार का थर्राया हुआ स्वर सुनायी दिया—"डियर, तुम्हारा बहुत समय लिया। चाय ले लें। टहलते-टहलते पहुँचा दूंगा।"

कुमार के सम्बोधन से सम्बल का अंतरतम आनन्द के अतिरेक से झंकृत हो गया। सिहरन से घुटने भिड़ गये। आवेग में कुर्सी से उठ गयी। कुमार की ओर न बढ़ जाने के लिये शेल्फ की ओर घूम गयी। कुमार से आंखें चुराये बोली—"मुझे तो अच्छा लगा।" शेल्फ में दो-चार पुस्तके उलटी-पलटीं और बाथ रूम की ओर चली गयी। चेहरे पर पसीना अनुभव हो रहा था। मुह धो डाला। कानों में गूंज रहा था। डियर""डियर""फिर !

मगन को बिजली से चाय तैयार करने मे देर न लगी। सम्बल लौटी तो कुमार खड़ा हो गया—"कमरे से सिगरेट ले आऊं।" वह मुंह धो कर सिगरेट का नया पैकेट उठा लाया। सम्बल ने चाय डाली। चाय के बाद कुमार ने पैकेट खोल कर पहला ताजा सिगरेट सम्बल को पेश किया—"डियर, अन्तिम सिगरेट में साथ दो।"

सम्बल ठंडे पानी से मुंह धो और चाय पीकर सम अवस्था में हो गयी थी। सम्बोधन से फिर उद्वेलित, बोल न सकी, केवल दृष्टि से आभार प्रकट कर दिया। मस्तिष्क मे एक सुखद गमगमाहट भर गयी। शरीर हल्का हो गया, मानों कुर्सी से तिल भर उठ गया हो; जैसे पहाड़ी ब्राह्मण सहेली के घर दो-तीन बार ह्विस्की चख लेने पर लगा था।""उससे कहीं अधिक प्यारा, उत्फुल्ल उन्माद। एक कश लेकर स्वर संयत किया—"स्वयं ही मांगने को थी""मन की बात जान लेते हो।" प्यार से मुस्करायी।

सम्बल के साथ कुमार जीना उतरा तो सड़कों पर बिजली का प्रकाश था। हजरतगंज के चौराहे से वे विधानसभा मार्ग के सीधे रास्ते पर न जा कर महात्मा गांधी मार्ग के अपेक्षाकृत सूने और चक्करदार रास्ते चले। बड़े डाकघर और सेक्रेटेरियेट के पीछे घने वृक्षों के नीचे से इतने समीप-समीप कि दोनों के बाहु स्पर्श कर रहे थे और हाथों की उगलियां परस्पर उलझ जाती थीं। सम्बल

का सिर कुमार के कन्धे से छू रहा था। हुसैनगंज के चौराहे पर विदाई के लिये हाथ मिले तो छुटना ही न चाहते थे।

उस रात भी सम्बल नींद से पहले दोपहर और संध्या की सुखद स्मृतियों की कल्पना में दोहराती रही—डियर·······डियर·······प्रस्ताव ही समझो !····आदमी कड़ियल है।····सहज पके सो मीठा होय। उस संध्या से कुमार और सम्बल के हुसैनगंज जाने का मार्ग वही हो गया। एक दूसरे का हाथ थामे चलते।

दिसम्बर के दूसरे सप्ताह के अन्त मे तीन दिन कुमार और सम्बल को भेंट न हो सकी। कुमार आवश्यक काम से शुक्र की संध्या फैजाबाद चला गया था। सोमवार प्रातः लौटा। तीसरे पीरियड के बाद कुमार क्लास से निकला ता सिंह ने उसे कोहनी से पकड लिया। ऐसा चिपटा कि अपने मकान पर ही ले गया। सम्बल देख कर कतरा गयी। बुधवार तीसरे पीरियड के बाद बस स्टैंड पर मिलने का संयोग बन गया। बस में कुमार ने 'कपूर' मे लंच का और फिर कुछ समय घर बैठने का प्रस्ताव किया। सम्बल ने लंच लेना तो स्वीकार कर लिया परन्तु विवशता प्रकट की—कन्या कालिज मे उसका तीन मास का वेतन अटका हुआ था। प्रिंसिपल ने दोपहर बाद बुलाया था। यदि चूक जाती तो फिर महीनों के लिये टल जाता। सात सौ रुपये फसे हुए हैं। सम्बल भावुकता में भी ऐसे काम की उपेक्षा नहीं कर सकती थी।

लंच के समय सम्बल ने आतुरता से आशंका प्रकट की—"कन्वोकेशन के बाद अवकाश में कहीं बाहर तो नहीं जा रहे ?"

"हरगिज नहीं। अवकाश में संगति के अवसर का पूरा लाभ उठायें।" कुमार ने विश्वास दिलाया, "कन्वोकेशन शनि को है। रविवार तुम्हें मसरुफ़ियत तो नहीं ?"

सम्बल को मसरुफ़ियत नहीं थी।

"तो उस दिन लंच अपने मकान पर ही ले।" कुमार ने कहा और स्थिति स्पष्ट कर दी, "लेकिन मकान पर लंच पिकनिक टाइप का हो सकेगा। मेरा पार्टनर कल सर्वे कैम्प पर जा रहा है। वहां होटल, डाक बंगला कुछ नहीं। वह नौकर को साथ ले जाना चाहता है। मैंने अनुमति दे दी है।"

"कोई चिन्ता नहीं।" सम्बल झलक झपक कर मुस्करायी।

"सैंडविच, सॉसेज, पैटी, पेस्ट्री का प्रबन्ध कर लूंगा। कॉफ़ी खुद बना लेंगे।"

"सब अरेंज कर लूंगी।" सम्बल ने विश्वास दिलाया, "अम्मा से समोसे-टिकियां बनवा लाऊंगी। बहुत अच्छे बनाती हैं। बारह तक आ जाऊंगी।"

"अच्छा...." कुमार ठिठका, "सब अरेंज कर लोगी!" मुस्कान से सम्बल की आंखों मे देखा।

सम्बल ने मुस्कान और पलकों के संकेत से स्वीकृति दी।

दिसम्बर मास। शुक्र की रात कुछ वर्षा हो गयी थी। बदली और ठण्डी हवा रविवार दोपहर तक भी बनी थी। कुमार ने गंज के रेस्तोरां से सैंडविच, पैटी, सासेज वगैरा ले लिये। बादामी कागज के थैलों मे सामान लिये सम्बल की अगवानी के लिये बडे डाकघर की ओर चल दिया। सम्बल रिक्शा पर आती दिखाई दी। मोटा कोट पहने थी। उसके हाथों में भी एक पैकेट था।

कुमार के समीप पहुँच सम्बल ने रिक्शा छोड़ दिया। कुमार के साथ लारेंस टैरेस की ओर चलती वह मुस्करायी—"मौसम खूब सुहावना है।"

"संगति हो तो सब सुहावना है।" कुमार बोला।

सम्बल ने पुलक से अनुमोदन किया।

कुमार ने जीना चढने के लिये सम्बल को कोहनी पर सहारा दिया। घर मे नौकर न रहने के कारण वह दरवाजे में ताला लगा कर गया था। कुमार ने किवाड़ खोल सम्बल को मार्ग दिया। बैठक मे क़दम रखते ही सम्बल के मुख से निकला—"आह, यहां तो अच्छा गर्म है।" कुमार कमरे को सुखद बना लेने के लिये बिजली का हीटर जलता छोड गया था।

कुमार ने सम्बल के हाथ का पैकेट ले लिया था। अपने हाथ के पैकेट भी तिपाई पर रख कर सम्बल को भारी कोट उतारने मे सहायता देने के लिये मुड़ा। सम्बल ने कोट उतार कर बेंत की कुर्सी पर रख दिया था और साड़ी का पल्ला फिर से संभाल रही थी। उसकी नज़र तिपाई पर पैकेटों में खड़ी, चमकीला लेबल लगी बोतल पर पड़ी—"ओ, ह्विस्की!" उसकी पतली भौवें उठ गयी।

"खयाल था," कुमार हंसा, "ऐसी सर्दी में शायद अच्छी लगे। हमारा परिवार देवी का उपासक है। शुभ अवसर और पुण्य तिथि पर देवी के प्रसाद का आचमन लिया जाता है। तुम्हें एतराज है ?"

"कोई एतराज-इन्कार नहीं, विश्वास और भरोसा है।" सम्बल हृदय पर हाथ रख मुस्करायी।

कुमार ने पूर्ण विश्वास और भरोसे की स्वीकृति के सकेत मे गहरे निश्वास से दोनों बांहें फैला दी।

सम्बल ने कुमार की उस मुद्रा को आलिगन का निमन्त्रण समझा। उमग कर कुमार की ओर लपक गयी। एड़ियां उठा कर दोनों बांहे कुमार के गले मे डाल दीं, चोली का कसाव उसके सीने पर दबा दिया। कुमार ने विभोर होकर उस समर्पण को गूढ़ आलिगन में ले लिया। महीनो से सनसनाता उसका रक्त सहसा खौल उठा, शिरायें उग्र हो गयीं। सम्बल ने कुमार के शरीर से दबे अपने शरीर पर उसकी उत्तेजना अनुभव की। रक्त के उबाल से अधीर होकर कुमार के गले में पड़ी बांहो को कस लिया और अधिक चिपक गयी। कुमार ने उसके छरहरे शरीर को दोनों बांहों मे उठा उसके होंठो पर अपने होंठ दबा दिये। सम्बल की आंखें मुंद गयी, होंठों ने सहयोग दिया।

कुमार ने सम्बल को चूम सोफा पर लिटा दिया। लपक कर बैठक का सपाट खुला दरवाजा मूंद चिटखनी लगा दी। उसे बांहों मे लिये अपने कमरे में चला गया। सम्बल सिहर-सिहर कर उसके कंधों और गर्दन से लिपटती जा रही थी, उसके होंठों को छोड़ना ही न चाहती थी। कुमार उद्वेग मे सम्बल की बडी और दूसरे वस्त्रो की रुकावट को दूर करने लगा। सम्बल ने उसके हाथो को रोका—"नो डियर, नो....."

"अब एतराज-इन्कार क्यों ?" कुमार ने खरखराते, धीमे स्वर मे याद दिलाया।

सम्बल ने कुमार के हाथ पकड़े आंखें उसकी आंखों में गड़ा दीं—"डियर, परिणाम का भय नहीं ?"

"भय !" कुमार विस्मित था, "इस वैज्ञानिक युग मे परिणाम का भय ?"

तुम्हें आना था, बात स्पष्ट थी ।"

सम्बल उसके हाथ अपने हाथों में लिये अधमुदे नेत्रों से मुस्करायी—"पर डियर, ब्याह से पहले""ठीक नहीं ।" और कुमार के होंठ चूम लिये ।

कुमार के हाथ और स्वर शिथिल हो गये—"विवाह की बात तो मैंने कभी नहीं सोची ।"

सम्बल तड़प कर फ़र्श पर खड़ी हो गयी । जैसे कुमार के मादक स्पर्श में बिजली की करेन्ट आ गयी हो—"धूर्त !" चेहरा क्रोध और घृणा से विकृत । दबे स्वर में फटकारा—"लड़की का भोग ही तुम्हारा प्यार है""धिक्कार है ऐसे कपट को !"

कुमार की उत्तेजना भी खिन्नता से क्रोध में बदल गयी—"भोग के लिये झपटी तो तुम्हीं थी ।" स्वर कुछ ऊंचा हो गया, "प्यार के कपट से किसी को जीवन भर भरण-पोषण और भोग के लिये बांध लेने का जाल धूर्तता नहीं है ?"

सम्बल साड़ी कन्धे पर संभालती और केशों को समेटती कमरे से निकल गयी । विफल उद्वेग की धड़कन से गहरा निश्वास लिया"""बस बच गयी !

कुमार बैठक में आया तो सम्बल अपना कोट पहन, बटुआ लेकर बाल्कनी में निकल चुकी थी । कुमार रेस्तोरां से लाये लिफ़ाफ़ों से भरी तिपाई के समीप सोफ़ा कुर्सी पर बैठ गया । मस्तिष्क प्रवंचना और अपमान की ग्लानि से और शरीर खंडित उत्तेजना के शैथिल्य से जर्जर । सिर बहुत भारी होकर चकराने लगा । कुछ क्षण माथे को दोनों हाथों में पकड़े रहा । तन और मन दोनों ही अवश हो रहे थे । कुमार ने सिर से बोझ झटक देने के लिये गर्दन हिलायी । नजर तिपाई पर रखी ह्विस्की की बोतल पर पड़ी । अदम्य प्यार और उद्दाम उत्तेजना के नशे में बोतल उपेक्षित, अछूती रह गयी थी । खयाल आया—विकलता में ह्विस्की सहायक हो सकेगी !

कुमार को उठ कर गिलास और जल ले लेने का धैर्य न था । हाथ बढ़ा कर बोतल उठा ली । उंगलियों की जबरदस्त पकड़ से पेचदार डाट को मरोड़ कर सील तोड़ दी और बोतल से दो घूंट निगल लिये । बोतल तिपाई पर रख दी । गले में तीक्ष्ण द्रव की चरचराहट से ज़रा खांसी आ गयी । ह्विस्की के

प्रभाव से सम्भल सकने की आशा से माथे को दोनो हाथों से दबा लिया।

दो मिनिट मे ह्विस्की का कुछ प्रभाव मस्तिष्क में अनुभव हुआ परन्तु शान्ति नही, विकलता ही बढ़ी। वह कुर्सी से उठ खडा हुआ। दोनो हाथ पेंट की जेबों मे धंसाये बैठक में चहलकदमी से स्थिरता अनुभव करने का यत्न करते लगा। कल्पना में सम्बल के पतले गुलाबी होंठों के बीच उजले बेदाना जैसे दांतों की पंक्ति, मुस्कान, अधमुंदी गुलाबी आंखें, उसके प्यार से आतुर शब्द, अधीर आलिंगन !·····इन सब का प्रयोजन पारस्परिक संतोष नहीं, प्रेम की प्रवंचना से जीवन भर के लिये बांध लेने की इच्छा। उसकी खिन्नता और विकलता तीव्रतर और असह्य होती जा रही थी। अप्रिय स्मृति और कल्पना को दूर फेंक देने के लिये सिर को झटका। ह्विस्की की ओर देखा—शायद कुछ और ह्विस्की उस की चेतना को धुंधला करके विकलता और खिन्नता से मुक्ति दिला सके।

कुमार कुर्सी पर बैठ गया। बोतल उठाकर दो घूंट और गटक लिये। माथा दोनों हाथों में थाम लिया। मस्तिष्क में अधिक झनझनाहट और चक्कर, और भी अधिक विकलता। उबकाई सी अनुभव हुई। उसने घृणा से बोतल की ओर देखा—व्यर्थ···वाहियात····मन और भी खराब कर दिया।

महीनो से प्रेम के लिये प्रेम, पारस्परिक आकर्षण और कामना का नशा बढ़ता-चढ़ता आ रहा था। वह नशा शिखर पर पहुँच कर चरम निष्पत्ति के समय छल के लिये खिन्नता में बदल गया। कदमों के नीचे प्रेम-आकर्षण की चट्टान प्रवंचना का धुआ मात्र बन गयी। वह असह्य खिन्नता की खाई में गिर कर जर्जर हो गया था। उस उद्दाम, असीम नशे के उतार को ह्विस्की कैसे उठा सकती थी।

कुमार चाहता था, उस विकलता से मुक्ति, किसी भी प्रकार विकट आत्म-ग्लानि की खिन्नता से मुक्ति।········सुध-बुध खोकर भी, चेतना शून्य होकर भी विकलता से मुक्ति।

कुमार ने तिपाई की ओर हाथ बढ़ा कर फिर बोतल उठायी। खुले दरवाजे से आकाश की ओर दृष्टि लगाये बोतल का पेंच खोलते-खोलते मस्तिष्क में कौंध गया—जाल मे फंसते-फंसते बचा। मस्तिष्क को घोटती खिन्नता और विकलता

का धुंध छटने लगा।

कुमार बोतल लेकर उठ खड़ा हुआ। रसोई की ओर चला गया। बोतल कूड़ा डालने के कनस्तर मे छोड दी। गुसलखाने मे ठडे जल से मुंह धोते-धोते मुस्करा रहा था.........खूब बचा। दो मिनट के लिये उन्मेश मे जीवन भर के दलदल मे फंस जाता.........।

पागल है !

शिवनाथ ने सुबह जल्दी ही स्नान कर लिया। एक गिलास चाय पीकर कुर्ता-पाजामा पहना। बाहर निकलने को ही था कि पड़ोसी जगदेव आ गया। वह गिड़गिड़ाकर बोला—"भैय्या बड़ी आफत में पड़ गये, क्या करें। आधी रात से बाबा की तबियत बहुत खराब है। दरद से सांस रुक रही है। सुबह से टैक्सी खोज रहे हैं, सड़क पर कहीं टैक्सी है नहीं। डाक्टर पाल के सामने बहुत हाथ जोड़े, डबल फीस देने को कहा। वह है कि बिना टैक्सी आने को तैयार नहीं। बाबा को हस्पताल ही ले जाते पर कैसे········।"

शिवनाथ जल्दी तैयार हुआ था 'बंगाल-बन्द' प्रदर्शन में जाने के लिये परन्तु पड़ोसी के संकट की अवहेलना न कर सका। वह जगदेव के पिता की अवस्था से परिचित था—लगभग सत्तर साल पुराना शरीर। यों ही जर्जर तिस पर डेढ़ बरस से सांस और छाती में दरद का कष्ट। दो मास पूर्व भी रात मे बूढ़े को दरद का ऐसा दौरा उठा था। उस दिन शिवनाथ पड़ोसी के पिता के अन्तिम सत्कार मे सहायता के विचार में मिल से एक दिन की छुट्टी लेने की चिन्ता करने लगा था। परन्तु भला हो डाक्टर पाल का। डाक्टर ने मुंह अंधेरे ही आकर एक जबर इंजेक्शन दिया। आशा डाक्टर को भी अधिक नहीं थी परन्तु बूढ़ा संभल गया। जगदेव और शिवनाथ के केवल बनर्जी रोड की गली के ही नहीं, पीछे जिले-गांव के भी पड़ोसी हैं। जगदेव हावड़ा की जूट मिल में काम करता है। साक्षर और समझदार है, यूनियन का मेम्बर भी है। तेरह बरस मे उन्नति करके फिटर बन गया है। भत्ता-वत्ता मिलाकर अढ़ाई-पौने तीन सौ पा जाता है।

जगदेव का पिता चेतराम उसी मिल में दरबान जमादार था। छः वर्ष पूर्व बहुत नेकनामी से रिटायर हुआ था। तब से बेटे के साथ हावड़ा में ही था। जब तक चेतराम चल-फिर सकता था, शिवनाथ की राय से जगदेव के पिता को कष्ट होने पर दो बार हस्पताल ले गया था परन्तु सरकारी हस्पताल के डाक्टरों

के व्यवहार से किसे सन्तोष होता है। लोगों की राय से एक बार बूढ़े को साधुओं के हस्पताल में बेलूर भी ले गया। वह हस्पताल छः-सात मील पड़ता था। मुफ़स्सिल की बस से आने-जाने में पूरा दिन टूट जाता।

अब बूढ़ा चल-फिर सकने से लाचार था और कष्ट पहले से अधिक। जरूरत होने पर जगदेव बूढ़े को कभी बस से, कभी टैक्सी से डाक्टर पाल के यहां ले जाता या डाक्टर पाल को टैक्सी में घर ले आता। डाक्टर पाल की फीस अधिक नहीं है, केवल पांच रुपया परन्तु जगदेव को सब मिला कर नौ-दस पड़ जाते। दवाई के दाम अलग। हर माह साठ-सत्तर खर्च हो जाते। डाक्टर को लाना पड़ जाये तो नब्बे-सौ। कई साथियों ने राय दी कि बुढ़े को सरकारी हस्पताल मे भरती करवा दो। यह बुढ़े को स्वीकार न था। जगदेव पिता को दुखी नहीं करना चाहता था, सब सह रहा था। जगदेव को शिवनाथ का पिता के प्रति यह व्यवहार अच्छा लगता था।

शिवनाथ पड़ोसी की खोली मे गया। बूढ़ा सांस के कष्ट और छाती में दरद से अर्ध मूर्च्छित-सा पड़ा था। सांस कष्ट मे तेज चल रही थी। अव्यक्त पीड़ा से चेहरा विकृत और मुंदी पलकों से आंसुओं की धारा। बूढ़े की अवस्था देख शिवनाथ का भी हृदय द्रवित हो गया। समस्या वास्तव मे कठिन थी। टैक्सी मिल नहीं सकती थी। शिवनाथ और उस जैसे सचेत कार्यकर्त्ताओं ने स्वयं कई दिन प्रयत्न किया था कि 'बंगाल-बन्द' प्रदर्शन के समय नगर की सड़कों पर कोई ट्राम, बस, टैक्सी या दूसरी सवारी न चल सके। पूर्ण हड़ताल ! सब काम बन्द होकर जनता के मन का असन्तोष प्रकट हो। जनता की संगठित इच्छा और मांग की अवहेलना सम्भव न रहे।

शिवनाथ जानता था, टैक्सी नहीं मिलेगी; मिलनी भी नहीं चाहिये। डॉक्टर पाल आयेगा नहीं परन्तु बूढ़े को यों छटपटाते उपेक्षित भी नहीं छोड़ा जा सकता था। कौन जाने किस क्षण क्या हो जाये ! फिर ऐसी अवस्था मे, जब सब दुकानें बन्द........।

शिवनाथ ने सोच-विचार कर जगदेव को सान्त्वना दी—"डाक्टर अपनी गाड़ी मे तो आ सकता है। गाड़ी पर डाक्टर का लाल चिह्न देखकर कोई नहीं

रोकेगा। पड़ोस में मुकुल बाबू के यहां से डाक्टर पांचू को फोन करता हूं। अपनी गाड़ी पर आ जायेगा। अरे बीस नहीं, चालीस-पचास जो मांगेगा, देंगे। घबराओ घबराओ मत।'' जगदेव ने कातरता से स्वीकार कर लिया।

× × ×

शिवनाथ को लौटने में पौन घन्टे के लगभग लग गया। लौटा तो आश्वस्त नहीं, अधिक परेशान था। बूढ़े की अवस्था वैसी ही थी। शिवनाथ के पीछे-पीछे पडोसी की गली से जगदम्बा बाबू भी बूढ़े का हाल पूछने आ पहुँचे थे। जगदेव ने उन्हे टीन की कुर्सी देकर बैठाया।

शिवनाथ ने जगदम्बा बाबू को संकेत से नमस्कार कर जगदेव से कहा—''डाक्टर पांचू बीस-चालीस क्या, सौ लेकर भी आने को तैयार नही। कहता है, हम हड़ताल में गाड़ी चलाकर अपनी बीस हजार की गाड़ी नहीं फुंकवायेंगे। उत्पाती लोग डाक्टर के निशान की परवाह नहीं करते। अभी सुबह-सुबह हमारे सामने सडक पर एक गाड़ी जला दिया। तुम एम्बुलेन्स बुलाकर मरीज को हस्पताल ले जाओ। हम नही आयगा।'' शिवनाथ ने बताया—एम्बुलेन्स को फोन किया। तीन मिनट घण्टी बजती रही। कोई बोला नही। फिर ट्राई किया तो ज़रा घण्टी बजी और फिर फोन में करेण्ट गायब। फिर डाक्टर को भी ट्राई किया तो उधर भी करण्ट नही। शिवनाथ ने दीर्घ निश्वास लिया, ''सब बन्द !''

जगदम्बा बाबू बूढ़े का हाल पूछने के बजाय हड़ताल के प्रति क्षोभ प्रकट करने लगे। जगदम्बा स्वयं को मध्यवित्त, ऊंचे स्तर का समझते हैं। उन्होने प्रौढ़ अवस्था तक क्लर्की की है। अब उनका बडा बेटा एक बडी कम्पनी मे अकाउण्टेट है। जैसे-तैसे लोगों का बढ़-चढ़ कर बोलना उन्हें नही सुहाता। हड़तालों-आन्दोलनों से उन्हें सदा विरक्ति रही है। उन्हें आजाद सरकार के हो-हल्ले की अपेक्षा ब्रिटिश राज की आतंकपूर्ण मरघटी शान्ति से ही सन्तोष था। चेतराम की खोली तक आने के लिये सडक पार करते समय प्रदर्शनकारियों की ललकारें उनके कान मे पडी थीं—''आमादेर दावी मानते होबे ! पूरो पेट भात चाई ! ऐ जुलमबाजी चोलबे ना ! सा ऽ ब बन्द !'

जगदम्बा बाबू को क्रोध आ गया—"ठीक कहता है डाक्टर। ऐसे हुड़दंग और उत्पात में यही होगा।"

शिवनाथ ऐसी परिस्थिति में बहस नहीं चाहता था। उसने संक्षेप में कह दिया—"हुड़दंग क्या है, भूखे लोग खाना मांग रहे हैं।"

जगदम्बा बाबू बिफर पड़े, मुख से गाली निकल गयी—"क्या नाम, सन् ४२ में यहां कितने लाख भूखे मर गये। अंग्रेज का राज था। किसी······ के मुंह मे से जबान नहीं हिली। किसी साले को हुकूमत करना भी आवे!"

जगदम्बा बाबू की आयु का लिहाज करता है शिवनाथ परन्तु चुप भी न रह सका—"तब न बोले होंगे पर लोग जब बोले तो अंग्रेजी सरकार ही खतम हो गयी। यह जनमत का प्रदर्शन है।"

जगदम्बा बाबू उत्तेजना मे थुथला गये—"·······हो हल्ले, क्या नाम तुम्हारे जनमत से खाना मिल जायेगा?"

शिवनाथ ने उत्तर दिया—"जनमत से देश को स्वराज्य मिल गया तो जनता को भात भी मिल जाना चाहिये।"

जगदेव की बहू और बेटी से बूढ़े के कष्ट का समाचार गली में फैल गया था। पड़ोसी भवानी और नरसिंह भी सहानुभूति मे आ गये। शिवनाथ मरणासन्न पड़ोसी की उपेक्षा कर प्रदर्शन में न जा सका। जगदम्बा बाबू की ओर पीठ कर पड़ोसियों से बूढ़े की सहायता के लिए सलाह करने लगा।

नरसिंह ने साहस बंधाया—"अपने गांव देहात मे बस, टैक्सी नहीं होती तो क्या हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं। खटिया में रस्सी डाल कर डोली बना लो। हस्पताल चार नहीं, पांच मील होगा। हमने दस-दस कोस तक मरीजों को ढोया है।"

प्रस्ताव सब को उचित लगा। जगदेव दूसरी खाट से दावन खोलने लगा। नरसिंह मजबूत पोढ़े बांस की तलाश मे चला गया। जगदम्बा बाबू बराबर हड़ताल के प्रति क्षोभ प्रकट करते जा रहे थे। लोगों को दूसरे व्यापार में व्यस्त, अपनी बात सुनते न देख वे उठे और छड़ी टेकते हुए चले गये।

नरसिंह बांस लेकर लौटा तो पड़ोसी गणेश भी उसके साथ आ गया। गणेश

ने बांस का प्रयोजन जान लिया था,—"हमारी बात मानो, इन्हें बेलूर के साधु हस्पताल ले चलो।"

भवानी ने विस्मय प्रकट किया—"सात मील ?………उधर क्या बस चल रही है ?"

"चल रही है तभी तो कह रहे हैं।" गणेश ने विश्वास दिलाया, "हड़ताल तो कलकत्ता-हावड़ा मे है। सिद्धे के मामा अभी-अभी देवघर से चले आ रहे हैं। उधर ट्राफिक चालू है। सरकारी हस्पताल पड़ेगा, पांच मील। बेलूर की सड़क, दो गलियां लांघ कर डेढ़ फर्लांग होगी। आगे बस मे ले जाना। सरकारी हस्पताल का डॉक्टर भी सरकारी अफसर। साधू बाबा लोग तो सेवा के लिये ही हस्पताल बनाये हैं।"

गणेश का सुझाव मान लिया गया। पांचों आदमी बारी-बारी से कन्धा देने के लिये साथ चले।

बनर्जी रोड की गली में दो-चार बच्चों के अतिरिक्त कोई नही था। दूसरी गली में मुडते ही गली के अन्त मे दस-बारह बरस के छोकरों का झुण्ड दिखायी दिया। लड़के हंस-हंस के चिल्ला रहे थे—'शा ऽ ब बन्द ! इन्कलाब जिन्दाबाद ! शा ऽ ब बन्द !' और गली के कोने पर लगे लेटरबक्स को ईंटें मार-मार कर तोड़ने का यत्न कर रहे थे। कुछ कागज नीचे पड़े जल रहे थे। लेटरबक्स के मुख से धुआं निकल रहा था।

"ऐ छेले ! क्या बेवकूफी करता तुम लोग !" शिवनाथ ने ऊंची ललकार से उन्हें डांटा।

"तुम बोका………" नरसिंह धमकाने के लिये दौड़ा, इसमे चिट्ठियां तुम्हारे मां-बाप की, देश मे तुम्हारे ताऊ-चाचा के नाम। सालो, सरकार का इसमे क्या बिगड़ेगा………।"

लड़के हंस-हंस कर 'शा ऽ ब बन्द ! शा ऽ ब बन्द !' चिल्लाते भाग गये।

नरसिंह ने गली के लोगो के प्रति क्षोभ प्रकट किया—"क्या करतूत सिखायी है औलाद को। अब चिट्ठी छोड़ने मील-आध-मील चलना पड़ेगा तो रोयेंगे अपने बाप को। ऐसे कमबख्तों के यहां लेटरबक्स लगाना ही बेवकूफी है

भवानी ने भी खिन्नता से सहयोग दिया—"इस मुहल्ले में नया लेटरबक्स देने से पहले जुर्माने में दाम वसूल किया जाये, तभी अक्ल आयेगी·······को !"

"अरे नासमझ हैं !" शिवनाथ ने धीमे से कह दिया।

सड़क सूनी थी, धूप तेज। खटिया की डोली एक पेड़ के नीचे रख दी गयी। प्रतीक्षा में थे कि बेलूर की ओर जाती बस आये तो संकेत से रोक ली जाये। शिवनाथ, भवानी और नरसिंह से अनुरोध कर रहा था—"तुम लोग मदद के लिये जगदेव के साथ चले जाओ। हम चल कर प्रदर्शन का हाल-चाल देखें। हमारे न जाने से लोग बात बनायेंगे।"

कुछ देर बाद बस की गूंज सुनायी दी। जगदेव ने धूप की चौंध से नजर को बचाने के लिये भवों पर हाथ की छाया कर उत्सुकता में दायें-बायें देखा। उसे बेलूर की दिशा में बस के आकार का धूल का गुब्बारा-सा दिखायी। उसने विकलता प्रकट की—"यह बस तो उधर से ही आ रही है, उधर जाने वाली तो आ नहीं रही।"

गणेश और नरसिंह ने उसे सान्त्वना दी—"धीरज धरो। उधर से आ रही है तो उधर जायेगी भी। आयेगी नहीं तो जायेगी कैसे।" मिनट भर में बस का आकार स्पष्ट हो गया। सड़क से लगी बस्ती की एक गली से नारे सुनायी दे रहे थे—'ये जुलुमबाजी चोलबे ना ! हड़ताल जिन्दाबाद ! इन्कलाब जिन्दाबाद ! शा ऽ ब बन्द ! जिन्दाबाद !'

बस जगदेव के पिता की खाट के सामने पहुँच रही थी कि व्यग्रता से झपटती छोटी भीड़ सड़क पर आ गयी—"रोको-रोको ! शा ऽ ब बन्द। रोको·······"

और बस पर पत्थरों की बौछार। बस के धीमे होकर रुकते-रुकते सामने का हवारोक शीशा चूर-चूर हो गया। भीड़ ने ड्राइवर और सवारियों को तुरन्त उतर आने के लिये ललकारा। तब भी बस पर पत्थर चल रहे थे।

जगदेव के पिता को डोली मे लाने वालों की प्रतिक्रिया दूसरी थी। वे भीड़ को रोकने के लिये आगे बढ़े। ड्राइवर और सवारियां जल्दी मे उतर गयीं परन्तु भीड बस के फिर चल सकने की सम्भावना नहीं रहने देना चाहती थी। बारह-पन्द्रह जवानों ने बस के दायें बाजू पर हाथ रख कर एक साथ जोर लगाया

इन्कलाब जिन्दाबाद ! बस जोर का झकोला खाकर भी सम्भल गयी।

जगदेव बदहवासी में भीड़ की ओर दौड़ पड़ा—"खबरदार ! खबरदार !" और भीड के हाथ से गिरा एक पत्थर उठाकर उस ओर फेंकने लगा।

भीड़ में से कुछ लोगों ने घूम कर देखा; ऐसा कौन जो भीड को रोकने आये। वे जगदेव को देख हंस पडे—"पागल है, पागल है !"

जगदेव उत्तेजना में भीड़ की ओर बढ रहा था। शिवनाथ और नरसिंह ने दौड कर उसके बाजू पकड लिये—"यह क्या पागलपन करते हो !"

तब तक भीड़ के नारे सहित दूसरे सामूहिक धक्के से गाडी करवट के बल गिर चुकी थी।

भीड़ जगदेव की उत्तेजना और दुःसाहस पर ताली बजा कर हंस रही थी। "पागल है, पागल है !"

जगदेव शिवनाथ और नरसिंह की बांहों से छूटने के लिये छटपटाता भीड़ को फटकार रहा था—"पागल तुम हो ! पागल तुम हो !"

आशीर्वाद

सप्ताह भर पूर्व सूचना आ गयी थी। बड़े सरदार केसरसिंह जी मेहरा का ज्येष्ठ पौत्र केडी यानि कुलदीप सिंह मेहरा दो मास की छुट्टी लेकर बहू और दो वर्ष के पुत्र सहित घर आ रहा था। दादा, पिता और पूरे परिवार को केडी के लिये गर्व था, सुदर्शन, सुशील और सफल जवान; अमरीका में विशेष योग्यता से इन्जीनियरिंग की डिग्री ली थी। स्वदेश लौटने से पहले ही एक खूब बड़ी औद्योगिक कम्पनी में अच्छी नौकरी मिल गयी। कम्पनी का कारोबार भारत में भी है। केडी की नियुक्ति कलकत्ता में हो गयी और आते ही डेढ़ हजार पाने लगा। केडी शिक्षा के लिये अमरीका जाते समय 'सरदार' था। लौटा तो 'मिस्टर' लगने लगा। केडी के दादा सरदार केसरसिंह का धार्मिक दृष्टिकोण उदार रहा, वैसे ही विचार पिता सरदार सोहनसिंह के हैं। लड़के के रूप परिवर्तन को देश-काल का प्रभाव मान कर उपेक्षा कर गये।

केडी उन्नीस की आयु में अमरीका गया था। स्वदेश लौटा तो उसके विवाह के लिये दो अच्छे प्रस्ताव परिवार के सामने थे। इसने परिवार से इस विषय में उतावली न करने का अनुरोध किया। कलकत्ते में एक वर्ष पूरा होने के पूर्व ही उसने स्वयं बहू चुन लेने की सूचना लखनऊ भेज दी। परिवार को नौजवान के इस व्यवहार पर भी आपत्ति न हुई। केडी ने अपनी रुचि के अनुकूल सुशिक्षित, आधुनिक और अपने परिवार से अधिक सम्पन्न, प्रतिष्ठित परिवार की लड़की चुनी थी। नौजवान के प्रति परिवार का गर्व और स्नेह और भी बढ़ गया। विवाह के बाद बहू दस दिन के लिये ससुराल में रह गयी थी। अब दो वर्ष बाद पहली सन्तान सहित आ रही थी।

केडी के दादा बड़े सरदार जी, पिता-माता, बहिनें और भाई सभी वंशबेल की बढ़ती को देखने के लिये लालायित थे। परिवार में खूब उत्साह और चाव

था। केडी की एक बहिन की ससुराल दिल्ली मे है। समाचार पाकर वह अपनी पांच वर्ष की बेटी सहित भाई-भाभी और भतीजे से मिलने के लिये दो दिन पूर्व लखनऊ पहुँच गयी थी। भतीजे के लिये बहुत सुन्दर पैडल से चलने वाली मोटर का उपहार लायी थी। एक बहिन अभी यूनीवर्सिटी मे थी। उसने समाचार पाते ही सवा सौ रुपया पाउण्ड की अंगोरा ऊन खरीद कर भतीजे के लिये स्वेटर तैयार कर लिया। अपेक्षित मेहमान बालक की दादी नये ढंग का स्प्रिंग और रबर-फोम से बना, मसहरी लगा, कमानीदार पलना खरीद लायी।

केडी मेहरा बहू, बच्चे और आया सहित २३ दिसम्बर प्रातः सवा नौ बजे सियालदह-पठानकोट एक्सप्रेस से आ रहा था। उसके भाइयों ने पिछली संध्या घर की दोनों कारों को खूब धुलवाकर पालिश करवा लगेज कैरियर लगवा लिये। अनुमान था सामान काफी होगा। केडी की दोनों बहिनें ने भाभी के स्वागत के लिये खूब भारी-भारी गजरे मंगवा कर रात ओस में रख दिये थे। केडी के पिता सरदार सोहनसिंह संध्या घर लौटे तो मकान में बिजली के दो कमरा-हीटर रहने पर भी एक और नये ढग का सुन्दर हीटर लेते आये। ख्याल था, कलकत्ता के मौसम के अभ्यस्त बेटे-बहू को लखनऊ की सर्दी से कष्ट न हो और छोटा बच्चा साथ था। तीन दिन पहले ही दो कमरे झाड़-पोंछ, गद्दे-पर्दे बदलवाकर मेहमानों के लिये सजा दिये थे। सब तैयारियों की चर्चा बड़े सरदार जी के कान मे भी डाल दी जाती थी। सभी जानते थे, बड़े सरदार जी केडी को बहुत चाहते थे और पड़पोते को देख पाने की आशा से उल्लसित थे। परिवार में जो भी बात होती, घूम फिर कर केडी के आगमन और बहू-बच्चे की सुविधा के प्रसंग पर आ जाती।

केडी के पिता संध्या नौ बजे खाने के लिये बैठे तो सरदारनी ने समीप बैठ कर चिंता प्रकट की--"बाबू जी (ससुर) भी स्टेशन चलेंगे या नहीं, कुछ बताया नही।"

"सुबह जैसा चाहेंगे देख लेंगे।" सोहनसिंह बात टाल गये।

सरदारनी का अभिप्राय था, यदि ससुर साढ़े आठ तक नाश्ता कर लेते तो वह स्वयं भी स्टेशन जा सकती थी। वर्ना ससुर के नाश्ते के समय उपस्थित

रहने की मजबूरी थी। बड़े सरदार जी मामूली सी बात में भी अपनी उपेक्षा-अवज्ञा अनुभव कर खिन्न हो सकते थे।

सरदार केसरसिंह मेहरा आयु के चौहत्तरवें वर्ष मे थे। सत्तर-इकहत्तर तक वे काफी सक्रिय थे। सोहनसिंह ने इन्जीनियरिंग पास की थी परन्तु आर्थिक दृष्टि से नौकरी की अपेक्षा पिता के व्यवसाय को अधिक लाभदायक देखकर दो साल बाद नौकरी छोड दी। पिता के ठेकेदारी के व्यवसाय मे योग देने लगे। पन्द्रह वर्ष मे सोहनसिंह पिता पर बोझ डाले बिना सब कुछ सम्भाल सकते थे। परन्तु केसरसिंह अपने कर्मठ स्वभाव के कारण व्यवसाय से उपराम न हुए। पूरे कारोबार पर नजर रखते थे। इमारती कामों की निगरानी कर आते। उनकी निगरानी और परामर्श लाभदायक होते। पहले की तरह अधिक श्रम की न शक्ति थी न जरूरत। स्वस्थ ही जान पड़ते थे। दांत और नजर ठीक थे। कमर और कदम सत्तर। दस्तार और ठाठा (पगड़ी और दाढ़ी) सावधानी से बांधते थे। दाढ़ी बर्फ की तरह सफ़ेद हो जाने के कारण पगड़ी भी सफेद ही रखते। ड्राइवर साथ रहने पर भी ड्राइव स्वयं ही करते थे परन्तु इकत्तरहवां पूरा होते-होते दांतो ने सहसा बिदा मांग ली। इस आयु में कृत्रिम दांत सह्य न हुए। इसका प्रभाव पूरे शरीर पर पड़ा। चबा न सकने के कारण पाचन शक्ति क्षीण और भोजन मे अरुचि हो गयी। हाथ-पांव कुछ लजरने लगे। स्वभाव और बोलचाल पर भी असर आ गया। मुख खाली और पोपला होकर पिचक गया। दाढ़ी लपेट कर बांधने के श्रम से थकावट हो जाती। लम्बी सफेद दाढ़ी सीने तक लटकी रहने लगी। करीने से पगड़ी बांधनी भी दुस्साध्य हो गयी। केशों को ढाई तीन गज मलमल के टुकड़े से लपेट लेते। कुछ दूर चलने के लिये भी छड़ी की आवश्यकता हो गयी। स्वयं ड्राइव न कर सकते थे। अपने आपको अपाहिज और दूसरों पर बोझ समझने की अनुभूति से मन खिन्न रहता। बाहर जाना बहुत कम हो गया। परन्तु स्थानीय समस्याओं, अखबार और बातचीत मे अब भी रुचि थी। मन स्वस्थ हो तो व्यवसाय, सामाजिक और कानूनी प्रश्नों पर बड़ी सुलझी राय दे सकते थे। किसी भी बात में अपनी उपेक्षा अनुभव हो जाये तो बहुत चिढ़ जाते""सब कुछ कर-धर के अब हम लोगों के लिये बोझ

बन गये। अपनी ओर अधिक चिन्ता अनुभव कर लेते तो कह बैठते—"""हम क्या ऐसे अपाहिज हो गये है।"

केडी के पिता और मां बड़े सरदार जी की सुविधा और भावना के प्रति विशेष सावधान और तत्पर रहते थे। केडी की दादी बीस वर्ष पूर्व वाहगुरु की प्यारी हो गयी थी। इससे पहले भी तीन-चार वर्ष पलंग से उठने लायक न थी। केडी की मां बहू बन कर आयी थी तभी से ससुर को 'बापू जी' सम्बोधन करती थी और पिता समान उनका आदर करती आयी थी। अब और भी सतर्क थी। पति या शेष परिवार को भोजन चाहे नौकर परोस दे, ससुर को स्वयं परोसती और समीप उपस्थित रहती। उनके लिये साबुन, तौलिया, गरम पानी भी स्वय ही देती।

केशरसिंह जी की नींद छः बजे तक खुल जाती थी। पलग के तकिये के साथ ही बिजली की घंटी का बटन था। केडो की मां ससुर के लिये चाय तैयार रखती। उनके कमरे की घंटी सुनते ही स्वयं चाय का गिलास लेकर आती और 'पैरीपैणा' (पांयलागन) कहकर ससुर का आशीर्वाद ले लेती। उस दिन वे चाय लेकर आयीं तो मोहनसिंह साथ थे। बेटे को आया देख कर बड़े सरदार जी ने उसे पलंग के पैताने बैठने का संकेत किया—"आओ काक्का जी।" वे अपने बावन वर्ष के प्रौढ बेटे को 'काक्का जी, (छोटा लड़का) पुकारते थे। चाय का गिलास हाथ मे लेकर सर्दी का हाल पूछ लिया। सोहनसिंह ने बताया सर्दी काफी थी।

केसरसिंह जी को याद आ गया—"आज तो काक्का केडी आ रहा है; कितने बजे ?"

सोहनसिंह ने बता दिया—सियालदह एक्सप्रेस सवा नौ बजे आती है। पिता चाय का गिलास समाप्त कर लें तब तक वे मौसम की बात करते रहे।

केसरसिंह ने पूछ लिया—"मैं भी कोशिश करू स्टेशन चलने की ?"

सोहनसिंह की नजर झुक गयी—"घंटे भर पहले माल एवेन्यू से फोन आया था।"

केसरसिंह जी की सफेद भंवें मौन प्रश्न में उठ गयी।

सोहनसिंह कुछ ठिठके—"नारंग ताया जी बयासी तो पूरे कर चुके थे⋯⋯।"

"क्यों⋯⋯क्या⋯⋯?" केसरसिंह जी के होंठ खुले रह गये।

"आधी रात के करीब पूरे हो गये।" सोहनसिंह का स्वर शोकार्त था।

बड़े सरदार जी स्तब्ध रह गये। दीर्घ निश्वास लिया—"वाहगुरु की इच्छा। हमारे लिये तो देवता थे।" गला रुंध गया। मुंदी आंखों की कोरें भीग गयीं।

सोहनसिंह पिता को सान्त्वना के लिये बोले—"समय आ गया था। बयासी के हो गये थे। अब शरीर साथ नहीं दे रहा था। जबान भी लटपटाने लगी थी। कुछ लकवे का सा शक हो रहा था। कहते हैं, कल दिन में बिलकुल ठीक थे। रात लेटे तो नागार्जुन डैम की रिपोर्ट पढ़ने के लिये पलंग के सिरहाने लैम्प रखवा लिया था। केवल सिनेमा के सैकण्ड शो से लौटा तो दादा के कमरे में रोशनी देख कर उसे कुछ हैरानी हुई। उसने भीतर झांका। रिपोर्ट कालीन पर पड़ी थी और नारंग जी की गर्दन एक तरफ लटकी हुई। बेपलक आंखें खुली। केवल ने वकील साहब (पिता) को जगा कर खबर दी। डाक्टर जायसवाल को बुलाया गया। अचानक दिल बैठ गया था।"

सरदार सोहनसिंह रिटायर्ड डिवीजनल एक्जीक्यूटिव इंजीनियर मोहनलाल नारंग के प्रति अपने पिता की कृतज्ञता और अपने व्यवसाय की समृद्धि मे नारंग जी की कृपा के इतिहास से खूब परिचित हैं। उन्होंने पिता के व्यवसाय में सहयोग आरम्भ किया तो नारंग जी अभी रिटायर नहीं हुए थे। केसरसिंह मेहरा के मामूली ठेकेदार से उन्नति करके मेहरा एण्ड संस, गवर्नमेन्ट कन्ट्रेक्टर्स बन सकने में नारंग जी की आत्मीयतापूर्ण उदारता बहुत सहायक हुई थी। नारंग जी की सहायता के भरोसे ही केसरसिंह जी ने पहले माल एवेन्यू के समीप क्ले स्क्वायर में एक मकान खड़ा कर लिया था। उनकी सप्रू मार्ग (तब आलिवर रोड) की भव्य कोठी बारह वर्ष पूर्व बनी थी। केसरसिंह जी ने कोठी का शिलान्यास नारंग जी के हाथों करवाया था। मेहरा परिवार नारंग परिवार का अपना ज्येष्ठ और आदरणीय मान कर उनके सभी हर्ष-विमर्ष में सहयोग देता था। नारंग परिवार भी काफी फलाफूला। नारंग जी के बड़े पुत्र लखनऊ के सफल वकीलों मे हैं और छोटे पुत्र रेलवे में ऊंचे पद पर इंजीनियर।

सोहनसिंह का गला भर्रा गया—"उन लोगों ने कहा है, अर्थी साढ़े नौ बजे तक जरूर चल देनी चाहिये। आप तैयार हो जायें तो हम तीनों आठ बजे माल एवेन्यू चले चलें। बच्चे सीधे स्टेशन चले जायेंगे। फिर वहां जैसा होगा, देख लेंगे.........।"

सरदार केसरसिंह बेटे और बहू के साथ नारंग जी की कोठी पर पहुँचे तो काफी लोग आ चुके थे। परिवार के कुछ लोगो की आंखो में नमी जरूर थी परन्तु वातावरण मृत्यु के आतंक का अथवा शोकार्त न था। समवेदना के लिये आने वालो को देखकर परिवार के लोग जरा आंखें पोंछ लेते, स्त्रियां कुछ ठुनक लेती। आगन्तुक सान्त्वना देते—"यह क्या शोक का अवसर है? ऐसी आयु, सम्मान और फूलता-फलता परिवार भगवान सबको दे। भाई इस दुनिया में जो आया है, जायगा भी। नारंग जी बड़े पुण्यात्मा थे। जिन्दगी भर सबको सहायता दी। स्वयं अंत समय भी किसी को कष्ट न दिया। न आह, न ऊह! योगियों की तरह चोला छोड़ दिया.........।"

कोठी की ड्योढ़ी पूर्व-दक्षिण है। बरामदे में सुबह की धूप आ रही थी। वहा समवेदना के लिये आये अभ्यागतो के लिये दरियां बिछा दी गयी थी। कोट-पतलूनधारियों के लिये दीवार के किनारे-किनारे कुर्सियां थी। वहीं अर्थी बांध कर रख दी गयी थी। शरीर अभी भीतर था। अर्थी के समीप बहुत से फूल, मालाये, हार, नारियल-छुहारे, खिलौने और झंडियां विमान की सजावट के लिये मौजूद थे। सुनहरी कामदार शाल ऊपर के कफन के लिये था। बहुत लोग अपने साथ भी फूल और हार लेते आये थे। केसरसिंह और सोहनसिंह अन्य अभ्यागतों के साथ दरी पर बैठ गये। सरदारनी भीतर जनाने में चली गयी। केसरसिंह मौन थे। उनके हमपेशा और अच्छे परिचित रामदयाल गुप्ता भी आ गये थे। गुप्ता जी भी साठ पार कर चुके हैं। केसरसिंह जी के अतिरिक्त अन्य आगन्तुक दिवंगत की प्रशंसा में मुखर थे।

नौ बजते-बजते स्वर्गविमान (लाश ले जाने वाली बस) और स्वर्गविमान के आगे-आगे चलने के लिये एक जीप आ गयी। जीप पर बैंड बजाने वाले बैठे थे। भीतर से चार आदमियों ने सफेद कोरे कपड़े में लिपटा शरीर लाकर अर्थी

पर रख दिया। अर्थी पर सुनहरी कामदार कपड़ा ओढ़ा कर उसे औपचारिक ढंग से सजाया जाने लगा। अन्य महिलाओं के साथ सरदारनी भी बाहर आ गयी। सोहनसिंह ने समय देखा नौ बज चुके थे। गुप्ता जी के कान के समीप मुंह कर अपनी मजबूरी बतायी। गुप्ता जी ने तुरन्त केसरसिंह जी से सिफारिश की—"सरदार जी, हम आपके साथ हैं, इन लोगों को स्टेशन जाने दीजिये।"

सोहनसिंह सकोच से बोले—"ड्राइवर दस मिनट मे स्टेशन से गाड़ी लौटा लायेगा।"

"क्या जरूरत ? हमारी गाड़ी है।" गुप्ता जी ने आश्वासन दिया।

सोहनसिंह ने पिता को सुनाकर गुप्ता जी से अनुरोध किया—"भैया जी, पिता जी नीचे घाट मे न उतरें तो अच्छा रहे। इन्हें बहुत थकावट हो जायेगी।"

गुप्ता जी ने फिर सान्त्वना दी—"अरे हम साथ हैं, फिक्र मत करो।"

सोहनसिंह पत्नी के साथ चल रहे थे कि भीतर से एक आदमी पैसे और दूसरा चिल्लर से भरा बड़ा थाल लेकर स्वर्गविमान के समीप आ गया।

सरदार जी और गुप्ता जी के साथ खड़े दुबे जी ने खिन्नता प्रकट की—"भाई यह हमें पसन्द नहीं। न्योछावर फेंकी जायेगी और भीड़ पैसे-पैसे पर चील-कौओं की तरह झपटेगी।" इस समय तक कोठी के फाटक के अन्दर और बाहर सड़क पर भी साधारण सामान्य लोग और लड़के-लड़कियां अर्थी के प्रस्थान की प्रतीक्षा में आ खड़े हुए थे।

"वाह, दुबे जी !" गुप्ता जी बोले, "यह पैसों की लूट नहीं, सौभाग्य की लूट है। ऐसे भागवान की अर्थी की न्योछावर लोग आदर से उठा ले जाते हैं, अपने बच्चों के लिये ताबीज बनाने को। उनके बच्चे भी ऐसी आयु पायें और उनके परिवार फले फूलें।"

केसरसिंह जी की बहू सरदारनी की नजर चिल्लर के थाल की ओर गयी। पति के समीप होकर अनुरोध किया—भैया जी (गुप्ता जी) से कहिये, हो सके तो कोई पैसा-वैसा हमारे निक्के के लिये........।"

गुप्ता जी ने सुन कर आश्वासन दिया—"हां हां, हो जायेगा।"

सोहनसिंह पत्नी सहित स्टेशन चले गये ।

नारंग जी की अर्थी स्वर्गविमान पर रखी जा रही थी । बैण्ड बजने लगा । मूठे भर-भर कर न्यौछावरें फेंकी जाने लगीं । लड़के-लडकियों की भीड़ और कई भद्र लोग भी सौभाग्य लूटने के लिये लपक पडे । गुप्ता जी की आयु और शरीर के लिये ऐसी फुर्ती साध्य न थी । परन्तु उन्होने दो चुस्त लडकों को बुला कर सौदा कर लिया था—दो-तीन पैसे हमें चाहियें, पैसे का रुपया देंगे । उन्हे दो पैसे मिल गये ।

सरदार केसरसिंह जी को गंडे-ताबीज पर न विश्वास था और न उससे विरोध । बहू का अनुरोध सुन चुके थे । सरदार जी ने पैसा जेब में डाल लिया ।

स्वर्गविमान की छत पर अर्थी मे नारंग जी का शरीर था । बस के भीतर परिवार के पन्द्रह-बीस लोग बैठे हुए थे । पहले बैण्ड बजाती जीप, फिर स्वर्ग-विमान, उसके बाद बीस-पच्चीस मोटरें ।

सरदार जी ने चिता के समीप जाने का आग्रह किया । गुप्ता जी सरदार जी को बांह का सहारा देकर नीचे चिता तक ले गये । चिता दिवंगत की स्थिति और सम्मान के अनुकूल ऊची और भारी बनायी गयी थी । केसरसिंह जी ने इतनी आयु तक ऐसा दृश्य दसियों बार देखा था । दिल के भी मजबूत थे परन्तु नारंग जी के निश्चल शरीर पर काठ के कुन्दे रखे जाते देख कर गहरा निश्वास लिया—अब अपना भी समय आ गया""""ऐसे ही एक दिन""" ।

नारंग जी के ज्येष्ठ पुत्र वकील साहब ने चिता मे अग्नि दी तो केसरसिंह जी की गर्दन झुक गयी । मन वश में करने के लिये उन्होंने दोनों हाथों से चेहरा ढक लिया ।

कुछ ही मिनिट में प्रचुर घी और तिल-जौ के प्रभाव से चिता धू-धू कर जलने लगी । ऊंच-ऊंची उठती लपटों का सेक दूर तक जाने लगा । इतना काठ-ईंधन भस्म होने के लिये कई घण्टे समय दरकार था । लोग चलने लगे । गुप्ता जी केसरसिंह जी को बांह का सहारा दे गाड़ी की ओर लौटा ले चले । सड़क से नीचे रेत में नदी तट की ओर उतरते समय भी सरदार जी की सांस फूल गयी थी । अब मन पर अवसाद का बोझ था । तिस पर सड़क की ओर चढ़ाई ।

गुप्ता जी की बांह और छड़ी के सहारे के बावजूद चार-पांच कदम चलते ही सरदार जी के फेफड़े धौंकनी की तरह धप-धप करने लगते। घुटने कांप-कांप जाते। बार-बार रुकना पड़ता। विचार आया, व्यर्थ यहां से भागने का प्रयत्न। छः महीने-साल में यहां ही लाया जायेगा। गुप्ता जी धैर्य के लिये सान्त्वना दे रहे थे—सरदार जी जल्दी क्या है। आराम से चलिये।

गाड़ी में बैठ, सांस लेकर केसरसिंह जी ने मुस्कराने का प्रयत्न किया—"भैया गुप्ता, हमें लिये जा रहे हो, दस दिन में तुम्हीं फिर यहां लाओगे।"

"क्या बातें कर रहे हैं सरदार जी!" स्नेह उपालम्भ से गुप्ता जी बोले, "घर पर स्टेशन से लौटे बेटा-बहू, पोते-पड़पोते आप की राह देख रहे हैं।"

मानो संजीवक इंजेक्शन से केसरसिंह जी के स्नायुओं में शक्ति की लहर दौड़ गयी। श्वास सम हो गयी, चेहरे से थकावट की मुर्झान दूर। कल्पना में दो बरस का स्वस्थ गोल-मटोल किलकता पोता उछलने लगा। गाड़ी अशोक मार्ग पर बढ़ी जा रही थी। सप्रू मार्ग (आलिवर रोड) का मोड़ सौ गज सामने था। केसरसिंह जी ड्राइवर से बोले—"बेटे हमें सामने के मोड़ पर ही उतार देना।"

"ऐसी क्या बात है, कोठी में ही पहुंचाये देते हैं।" गुप्ता जी ने कहा।

"नहीं-नहीं, बहुत शुक्रिया। पचास कदम ही तो है।" केसरसिंह जी ने गुप्ता जी के कंधे पर हाथ रख दिया, "दस कदम चल लेंगे, धूप अच्छी है।"

केसरसिंह जी सप्रू मार्ग की गोलाई पर बीस कदम ही बढ़े थे कि अपनी कोठी के फाटक पर दिल्ली से आयी पोती की पांच वर्ष की बेटी और केडी के बेटे के लिये दिल्ली से लाया खिलौना मोटर दिखायी दिये। मोटर पर प्यारा गोल-मटोल बच्चा। समीप बड़ा जूड़ा बांधे आयानुमा सांवली औरत। कुछ कदम बढ़े तो बच्चा अपनी मोटर को सड़क पर ले जाने के लिये जिद्द से चीखा। सरदार जी का हृदय उछल कर आंखें नमी से धुंधला गयीं।

आया बच्चे की मोटर को रोके थी। अभी-अभी एक भारी ट्रक कोठी के सामने दायें और एक कार बायें से गुजर गये थे। आया बच्चे को सड़क पर कैसे जाने देती।

"ओ बाबा उदर नेई जाता।" केसरसिंह जी ने आया का बंगला उच्चारण

सुना। मन पुलक कर कदम तेज हो गये। बच्ची और आया की नजर उन पर पड़ी।

मुन्नी उछल कर भीतर भाग गयी। दौड़ कर बापू जी के आगमन की सूचना दी। आया ने अपरिचित जर्जर बूढ़े की ओर संकेत कर बच्चे को डराया—"हा, बूढ़ा बाबा पकड़ लेता, दौड़ो-दौड़ो।"

बच्चा सफेद पगड़ी, लम्बी सफेद दाढ़ी में छिपा चेहरा, लरजती चाल देख कर भय से चीखा और आया से चिपट गया। आया बच्चे को गोद में लिये मोटर को ढकेलती भीतर चली गयी।

केसरसिंह जी के कदम अपने दरवाजे पर ठिठक गये। नजर अधिक धुंधला गयी। सम्भलने के लिये रुक कर कई लम्बे सांस लेने पड़े।

भीतर समाचार पाकर केडी और उसका छोटा भाई लम्बे कदमों से फाटक पर लपक आये। केडी ने दादा को कौली में ले अपना सिर उनके कंधे पर लगा दिया। दोनों भाई दादा को सहारा देकर बरामदे में ले गये। तब तक सोहनसिंह और पोत बहू भी आ गये। पोत बहू ने झुक कर ददिया ससुर के पांव छुए। केसरसिंह जी को आराम कुर्सी पर बैठा दिया गया। केडी और छोटी बहिन नरेन्दर और भाई विक्रम एक साथ बोले—"निक्के को लाओ। दादा जी को दिखाओ।"

नरेन्दर स्वयं दौड़ कर निक्के को ले आयी। बच्चा डरा हुआ था। पुनः भय की ओर बढ़ाये जाने पर उसने चीख कर मुंह मोड़ लिया।

"ले जाओ, ले जाओ, तंग न करो बच्चे को।" केसरसिंह जी के स्वर में थकावट और खीझ थी, "पहचानता नहीं, डर जायेगा।" उन्होंने पलकें मूंद लीं, "जरा आराम करेंगे।"

केडी और सोहनसिंह उन्हें सहारा देकर उनके कमरे तक ले गये। पलंग पर लिटा कर लिहाफ ओढ़ा दिया। केसरसिंह जी ने एकान्त की इच्छा से पलकें मूंद लीं। बेटा और पोता उनकी इच्छा भांप चले गये।

केसरसिंह जी का मन अपनी अवस्था के प्रति ग्लानि में डूबने लगा। क्या

है फायदा ऐसे जीने का''''जब आदमी सबके लिये बोझ''' अपनी ही औलाद के लिये हौआ बन जाये।

ख्याल आ गया जेब में पड़े न्यौछावर के पैसे—दीर्घायु के आशीर्वादी तावीज का''''दीर्घायु क्या आशीर्वाद है ?''''

पर बच्चे को तो बढ़ कर स्वस्थ सुदर्शन जवान बनना है। उसे तो दीर्घायु का आशीर्वाद चाहिए हो''''!

बच्चे को दुलरा सकने के लिये मन उमग आया।''''पुकार लेना चाहते थे परन्तु आवेग से गला रुंध कर पलके भीग गयीं।

सशस्त्र क्रांति के प्रयत्नों की कथा

सिंहावलोकन

जान हथेली पर लिये ब्रिटिश साम्राज्यशाही से लडने वालो का जीवन कितना रोमांचकारी रहा होगा, अपने आदर्शों के लिए उन लोगों ने क्या-क्या सहन किया, वह सब कहानी रोचक उपन्यास से भी अधिक रोमांचक है। इन संस्करणो मे पंजाब केसरी लाला लाजपत राय की हत्या का बदला लेने, देहली असेम्बली बम-काण्ड, वाइसराय की ट्रेन के बम से उडाये जाने, राजनैतिक बन्दियो को छुडाने के लिये जेल पर आक्रमण की तैयारी, क्रान्तिकारियों और पुलिस मे आमने-सामने लडाई की घटनाओ का ब्योरेवार वर्णन यशपाल ने तीन भागों मे लिखा है। पत्र-पत्रिकाओ ने इस पुस्तक की जितनी प्रशंसा की है, उसकी संक्षिप्त चर्चा के लिये भी यहां स्थान नही।

प्रकाशक